साम्यवाद ही क्यों ?

राहुल सांकृत्यायन

आधुनिक पुस्तक भंडार
७, इलगिन रोड
इलाहाबाद

[illegible]

प्रथम संस्करण १९३५
द्वितीय संस्करण १९३८
तृतीय संस्करण १९४२
चतुर्थ संस्करण [illegible]

प्रकाशक—किताब महल, [illegible] ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—[illegible], इलाहाबाद

समर्पण

जिसने अपने विशाल राज्यमें तीन बार धन-का समवितरण कर साम्यवादका क्रियात्मक प्रयोग किया, और इसी कारण जिसे माताने विष दिया; उसीके नगरमें लिखा यह ग्रंथ उसी साम्यवादके पुराने शहीद मुनि-चन्-पो (८४५-४६ ई०) की स्मृतिमें समर्पित।

विषय-सूची

दो शब्द

१९१८ ई०में मेरी इच्छा हुई, साम्यवादी मानव संसारका एक चित्र खींचनेकी; उसका खाका मैंने उसी वक्त बना लिया था; किन्तु १९२१ ई० तक फिर आगे बढ़नेका अवसर न मिला। १९२१ का प्रयत्न भी अधूरा और असन्तोष जनक रहा, फिर १९२३ ई०में मैंने उसे पूरा किया, जो कि "बाईसवीं सदी"के नामसे १९३१में पाठकोंके सामने आ चुका है। उस वक्त आशा नहीं रखता था, कि मैं इस छोटी पुस्तिकाके लिखनेमें हाथ डालूँगा। लेकिन हिन्दीमें साम्यवादपर इस तरहकी एक भी पुस्तकका न होना बुरी तरह खटक रहा था। १९३२ ई०में यूरोप-यात्रासे लौटते वक्त जहाज़ ही पर मैंने इसका खाका बनाया था; और आशा रखता था, १९३३ ई० हीमें इसे लिख डालूँगा, किन्तु १९३३ ई०की गर्मियोंके लिए मैंने जितना काम लिया था, वह समयकी दृष्टिसे बहुत अधिक था और फलतः इसे न कर सका। अबकी बार ल्हासामें रहते वक्त इसे लिख डालना पहिले हीसे निश्चय कर लिया गया था, और आज वह निश्चय पूरा हो रहा है।

पुस्तक ऐसे ही लोगोंके लिए लिखी गई है, जिन्हें अँग्रेजी या दूसरी भाषाओंमें इस विषयके सुन्दर ग्रन्थोंके पढ़नेका अवसर नहीं है; या जो लेखककी तरह ही स्वयम्भू पंडित हैं। "बाईसवीं सदी"को लिखते वक्त तक लेखक अर्थशास्त्र और साम्यवाद दोनोंके ज्ञानसे बिल्कुल कोरा था। इस पुस्तकके लिखते वक्त कमसे कम साम्यवादके बारेमें वैसा तो नहीं कहा जा सकता, तो भी उसका ज्ञान इस विषयका बहुत हलका है। ग्रन्थ, विशेषकर, अपने हृदयकी उठती शंकाओंके समाधानकी दृष्टिसे लिखा गया है। आधुनिक सभ्यता और उसके साधनोंसे सुदूर ल्हासा नगरमें लिखनेके कारण लेखकको आवश्यक ग्रन्थोंसे कुछ भी सहायता

लेनेका अवसर नहीं मिला। एक प्रकारसे इसे कलम-कागज स्याही और दिमाग़के सहारे ही लिखा गया है; फिर ऐसे काममें त्रुटि न रहे तो यह बड़े आश्चर्यकी बात होगी। लेखकके एक मित्रने बात चलते वक्त कहा था—"साम्यवाद ही क्यों" अच्छा होगा, किन्तु आपको "साम्यवाद कैसे होगा" इसपर भी लिखना चाहिए। लेखकके असमर्थता ज़ाहिर करनेपर, उन्होंने असन्तोष प्रकट किया। मैंने उसपर कई बार सोचा, किन्तु मैं अपनेको उसके लिए बिल्कुल अयोग्य और ना-तैयार समझता हूँ।

ग्रंथकी भूमिका "गंगा"के पुरातत्त्वांकमें छपी थी। [पहिले और दूसरे अध्याय 'विशाल भारत' (१६३४ ई०) में; और बाक़ी कितने ही अध्याय भी "योगी", "नवशक्ति" और "गंगा"में निकल चुके थे।]

राहुल सांकृत्यायन

द्वितीय संस्करण पर दो शब्द

"साम्यवाद ही क्यों" १९३४में लिखा गया था। उस वक्त हिन्दीमें ऐसी पुस्तकका बिल्कुल अभाव था। इस छोटी सी पुस्तकको लोगोंने पसन्द किया, यह देखकर लेखकको अपने प्रयत्नकी सफलतासे प्रसन्नता होनी ही ठहरी। मैंने इस संस्करणमें पुस्तकमें जहाँ-तहाँ संशोधन कर दिये हैं। पाठक पुस्तकके कलेवरको घटाने नहीं कुछ और बढ़ानेकी इच्छा रखते होंगे, और वैसे होता तो मैं ऐसा करता भी, मगर अब उसकी ज़रूरत नहीं; क्योंकि साम्यवादके बारेमें सविस्तार जाननेवालोंके लिए मैं अलग पुस्तक लिख चुका हूँ। आधुनिक साइंस कैसे साम्यवादी दृष्टिकोणका समर्थन करता है, इसके लिए आप "विश्वकी रूपरेखा" पढ़िये। समाजका विकास होते-होते वहाँ एक मंजिलपर साम्यवाद क्यों आ गया, इसके लिए "मानव समाज" मौजूद है। साम्यवादी दर्शनके लिए "वैज्ञानिक भौतिकवाद" और पूरब-पच्छिमके सभी दर्शनोंकी साम्यवादी गवेषणाके लिए "दर्शन-दिग्दर्शन" लिख चुका हूँ। इतिहासको चलते-चलते साम्यवादके दर्वाजेपर कैसे पहुँचना पड़ा, इसे यदि कहानियोंके रूपमें पढ़ना चाहते हैं, तो "वोल्गासे गंगा" तैयार है। इनके अतिरिक्त साम्यवादके महान् आचार्यों मार्क्स, एन्गेल्स, लेनिन् स्तालिन्के कितने ही ग्रंथोंके हिन्दी अनुवाद भी मैं कर चुका हूँ। इसी ख्यालसे मैंने इसको छोटा ही रहने दिया। जो दो-तीन घंटेमें साम्यवादको समझना चाहते हैं, उनके लिए यह प्रवेशिका है; जो ज्यादा समय देना चाहते हैं—और अपने, अपनी भावी सन्तानों तथा मानवताके कल्याणके लिए वैसा अवश्य करना चाहिए—उनके लिए दूसरे ग्रंथ मौजूद हैं।

किताब-महल
प्रयाग
३०-७-१९४३

राहुल सांकृत्यायन

भूमिका

मनुष्यकी उत्पत्ति और विकास*

साम्यवाद मनुष्यके विकासकी एक अवस्थाकी उपज है; इसलिए उसके मंतव्योंको अच्छी तरह समझनेके लिए हमें मनुष्यकी उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ, इस विषयमें वैज्ञानिकोंका मत जान लेना बहुत जरूरी है। चूँकि यह पुस्तक भारतकी परिस्थितिपर खास तौरसे ध्यान रखकर लिखी गई है, इसलिए मनुष्यके विकासको लिखते समय यहाँ भारतपर ध्यान रक्खा गया है।

विज्ञानविद् ज्योतिषियोंका मत है कि, अरबों वर्ष पूर्व, अपने ग्रह-उपग्रहों-सहित सूर्यका एक ही पिण्ड था। उस वक्त सूर्य और भी अधिक गर्म था। पृथिवी तथा मङ्गल आदि ग्रहोंकी उपादान सामग्री भी, भापके रूपमें होनेसे सूर्य-पिण्ड उस समय बहुत दूर तक फैला हुआ था। यद्यपि उस समय सूर्य आजसे बहुत अधिक बड़ा था; तथापि इसके कारण सारा आकाश आच्छादित नहीं था। रातको दिखाई-पड़नेवाले अगणित तारोंमें भी करोड़ों तारे, उस समयके सूर्यके बराबर हैं; किन्तु क्या उनसे आकाश आच्छादित हो गया है? यह तारे तो आकाशमें वैसे ही हैं, जैसे विशाल समुद्रमें तैरता अकेला जहाज! (सूर्यके पासवाले भागके अतिरिक्त उस समय भी आजकी तरह सारा आकाश अत्यन्त शीतल था)। किसी समय आकाशके किसी दूरवाले भागसे एक विशाल तारा सूर्यकी ओर अग्रसर होने लगा। जैसे-जैसे वह सूर्यके अधिक समीप होता गया, वैसे-वैसे सूर्यके वाष्प-समुद्रमें ज्वार-भाटा उठने लगा। समीपतम स्थानपर पहुँचनेके समय यह ज्वार-

---

* विशेष जाननेके लिए मेरी "विश्वकी रूपरेखा" पढ़िए।

मोटा सूर्यकी करोड़ों मील लम्बी सिगार जैसी पूँछ बन गया। जब वह तारा सूर्यसे दूर जाने लगा, तब, जिस प्रकार ज्वारके वेगमें कितना ही फेन समुद्रसे बाहर फिंक जाता है, वैसे ही वाष्पमय सूर्यका यह अंश अपने प्रधान पिण्डसे अलग फिंक गया। यह फेंका हुआ भाग कई खण्डोंमें हो अब सूर्य पिण्डके चारों ओर घूमने लगा। यही सौर-मण्डलके ग्रह हुए। दो अरब वर्ष पूर्व उक्त प्रकारसे ही पृथिवी सूर्यपिण्डसे अलग हुई। वैसे ही किसी आकाशीय ताराके कारण पृथिवीका एक भाग अलग होकर चन्द्रमाके रूपमें परिणत हो गया।

पृथिवी-पिण्डकी उष्णता निकल-निकलकर अब अपने चारों ओरके शीतल आकाशमें फैलने लगी। फिर ऊपरी भागपर पपड़ी (पर्पटी) पड़ने लगी, जिसकी चारों ओर उष्णतासे बने वायु-मण्डल और मेघ-मण्डल मँडराने लगे। कभी-कभी वर्षा भी होती थी; किन्तु उस तप्त पपड़ीपर वह छनमें ही विलीन हो जाती थी। बीच-बीचमें पृथिवी थर्रा उठती और पपड़ी टूट फूटकर ऊँची नीची भूमि या खड्ड तैयार करती थी। जब पृथिवीका तापमान कुछ कम हुआ, तब वर्षाका जल उन खड्डोंमें ठहरने लगा। यही आदि-कालीन समुद्र हुआ, जो खारा न था। यह पपड़ीवाले पत्थर ही आज स्फूटिक आदिकी स्तररहित चट्टानें हैं। पीछे (किन्तु जीव-कल्पसे पूर्व ही) आस पासके नंगे पहाड़ोंसे धुलकर जो तह-पर-तह कीचड़ जमने लगी, वही आजकलका अजीव सस्तर पाषाण है। प्रथम समुद्रका जल बहुत गर्म था। जब लाखों वर्ष बाद पृथिवीका ऊपरी भाग कुछ और ठण्डा हो गया, और समुद्रका तापमान घटा, तब पहिले-पहिल उसमें केंचुए जैसे अस्थि-रहित जीव पैदा होने लगे। जीवका विशेष गुण है भीतरसे वृद्धि तथा प्रसव।

भूगर्भशास्त्री पृथिवीपर जीवकी उत्पत्ति हुए ३० करोड़ वर्ष मानते हैं, जिसे जीव कल्प कहा जाता है; और इससे पहलेके समयको अजीव-कल्प (Azoic)। धीरे-धीरे तापमान भी कम होने लगा। मृत जीवों तथा धुलकर आये कीचड़के सम्मिश्रणसे अब और अधिक विकसित

जीवोंका खाद्य तैयार होने लगा, जिससे केकड़ा आदिकी तरहके जन्तुओं तथा निम्न श्रेणीकी वनस्पतियोंकी सृष्टि हुई। जब हम इस ३० करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुए पुराण-जीव-कल्प से चलकर २० करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुए मध्य-जीव-कल्प में आते हैं, तब पृथिवीपर गोह और मगरकी जातिके विकराल सरीसृप दिखाई पड़ते हैं। पृथिवीके गर्भसे सौ-सौ फीट लम्बी इनकी पथराई हड्डियाँ मिली हैं। उसी समय पृथिवीके दलदलमें करील जैसे पत्ते-रहित विशाल वृक्ष पैदा हुए, जिनको ही आज हम पत्थरके कोयलेके रूपमें पाते हैं।

सरीसृपोंके कालके अन्तमें पृथिवीके जल-वायुमें कुछ इस प्रकार-का भयङ्कर परिवर्तन हुआ कि, उनकी अधिकांश जातियाँ नष्ट हो गईं। लेकिन उस समय वृक्ष समुद्रके पासवाली शुष्क भूमिमें भी पैदा होने लगे थे। उधर जल, स्थल, दोनोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंसे एक ओर लोमधारी, स्तनधारी जन्तु और दूसरी ओर पक्षी उत्पन्न होने लगे थे।

वनस्पतियोंमें विकास होते-होते जैसे-जैसे भूमिके नीचेसे जल ग्रहण कर हरे-भरे रहनेवाले वृक्ष जलके तटसे दूर तक फैलते जा रहे थे; और जैसे-जैसे प्राणियोंके शरीरपर शीत उष्णके सहनेके लिए विशेष लोम, पंख आदि निकलते आ रहे थे, वैसे-ही-वैसे भूचालों द्वारा समुद्रके गर्भकी सतह, ऊपर उठ आई मृत्तिकासे युक्त भूमिपर वह जलसे दूर दूर फैलते गये।

वैज्ञानिकोंका कहना है कि, इन्हीं लोमधारी, सस्तन प्राणियोंमेंसे कुछ अपने शत्रुओंसे बचनेके लिए वृक्षोंपर चढ़नेका यत्न करने लगे। सैकड़ों पीढ़ियोंके निरन्तर इच्छा और अभ्याससे उनके हाथ-पैर वृक्षोंपर चढ़नेके उपयोगी हो गये। इस प्रकार वृक्षारोहणमें पटु वानरोंकी सृष्टि हुई।

अब हम सरीसृपोंके युगसे नव-जीव-कल्प में होते नव जीव कल्पके उषा (Eocene) युगमें प्रवेश कर चुके।

अ ल्प न व जी व उ षा के समय भारतमें विन्ध्याचलसे दक्षिण-वाला भाग ही समुद्रतलके बाहर था। हिमालय, तिब्बत और सारा भारत उस समय समुद्रके गर्भमें निमग्न था। म ध्य न व जी व उ षा (Miocene) युगमें प्रचण्ड भूचालोंका ताँता बँध गया जिसके फल-स्वरूप हिमालय पृथिवीके गर्भसे ऊपर उठ आया। समुद्र-गर्भसे निकलनेके कारण हिमालयकी ऊँची चोटियों तकपर आजकल सामुद्रिक जन्तुओंकी पथराई हड्डियाँ मिलती हैं।

भूचालने सीधी तौरसे भूमिको नीचेसे ऊपर नहीं उठाया था; इसीलिए अ जी व क ल्प से समुद्रके गर्भमें तह-पर-तह जमी मिट्टी सीधे एकके ऊपर एक न होकर आड़े-बेड़े हो गई। यही कारण है, जो हम पहाड़ोंमें पत्थरोंकी तहोंको अस्त-व्यस्त पाते हैं। हिमालयसे वर्षाका जल अब समुद्रकी ओर बहने लगा। यह जल मार्ग या नदियाँ अपने साथ अपार मृत्तिकाराशिको समुद्रमें पाटती रहीं। उधर इतस्ततः होनेवाले भूचालोंने भी समुद्रकी स्थितिपर प्रभाव डाला। इस प्रकार गंगा आदि नदियोंने लाखों वर्षोंके परिश्रमके बाद उत्तरी भारतके मैदानको समुद्रके जलसे बाहर निकाला।

जिस समय उत्तरी भारतका मैदान बन रहा था, उसी समय हिमालय-के निम्न भाग सिवालिक (=सपादलक्ष)में नाना जन्तुओंकी वृद्धि हो रही थी। इनमें गोरीला आदि कितने ही आजकल वहाँ न मिलनेवाले प्राणी भी थे, जिनकी कि पथराई हड्डियाँ (Fossil) आज भी वहाँ मिलती हैं। न व जी वो षा युगके इस भागको, प्राणियोंकी अधिकताके कारण, ब हु न व जी वो षा कहते हैं, जो कि प्रायः तीस लाख वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था। इसके अन्तिम भाग या आजसे ५-४ लाख वर्ष पूर्व सिवालिकमें ऐसे वनमानुष थे, जिनकी हड्डियोंसे पता लगता है कि, वह मानवताकी ओर अग्रसर हो रहे थे। तीन-चार लाख वर्ष पूर्व, अ ति श य न व जी वो षा यु ग में, हिमालयका नीचेवाला भाँगर प्रदेश बन रहा था। उसमें मिली पथराई अस्थियोंसे पता

है कि, वहाँ कितने ही इस प्रकारके घोड़े, गाय, गैंड़े, दरियाई घोड़े आदि रहते थे, जिनकी जातियाँ वहाँ अब लुप्त हो गई हैं। इसी समय सिवालिकमें मनुष्य और वनमानुसके बीचकी स्थितिके प्राणी रहते थे। यह वही समय था, जिस समय कि जावाका नर-वानर (Pithecanthropus erectus) निवास करता था।

दो लाख चालीस हज़ार वर्ष पूर्व पृथिवीपर एक भयंकर हिमप्रलय उपस्थित हुआ। इसके कारणके लिए वैज्ञानिक कई अनुमान लगाते हैं। कोई कहते हैं इसी समय सौरमण्डलसे बाहरका कोई तारा पृथिवीके समीपसे होकर गुजरा, जिसके कारण पृथिवीकी भ्रमणधुरी तिरछी हो गई, जिससे ऋतुओंमें फर्क पड़ गया (अथवा सौरजगत् ही घूमते-घूमते आकाशके किसी अत्यधिक शीतल प्रदेशमें पहुँच गया)। जलमें यह विशेषता है कि जहाँ अन्य वस्तुएं सर्दीकी अधिकताके कारण सिकुड़ने लगती हैं, वहाँ जल अतिशय सर्दीके कारण जमता ज़रूर है; किन्तु उससे वह सिकुड़नेकी जगह फैलने लगता है। यदि आज पृथिवीके सारे समुद्र जम जायँ, तो उनका जल बर्फ बनकर, स्थल भागपर भी सब जगह सैकड़ों हाथ मोटी बर्फ होकर, फैल जाय। उस समय पृथिवीकी भ्रमण-धुरीके तिरछी हो जानेसे सर्दीकी अधिकता हो गई और उत्तरी गोलार्द्धमें जहाँ उत्तरी ध्रुवसे बढ़ती बर्फकी टोपीके कारण समस्त उत्तरी यूरोप; और, उत्तरी अमेरिकामें न्यूयार्क तकका भाग बारहों मासके लिए, हिमसे ढक गया; वहाँ दक्षिणी गोलार्द्धमें टस्मानिया, न्यूजीलैण्ड आदिकी भी वही दशा हुई। भारतमें हिमालयकी हिमानियाँ (=ग्लेसियर)—जो आज दस हज़ार फीटसे नीचे कहीं नहीं हैं—पोठवार (कश्मीर) में दो हज़ार फीट (समुद्र तलसे ऊपर) तक चली आई। उस समय कलकत्तेमें लन्दन जैसी सर्दी पड़ने लगी थी। कारण कुछ भी हो, इस हिमयुगने सारे भूमण्डलपर अपनी अचल छाप छोड़ी है।

प्रथम हिम युग हजारों वर्षों तक रहा। फिर दूसरा हिमयुग आया; एक लाख वर्ष पूर्व तीसरा हिम-युग और पचास हजार वर्ष पूर्व

चौथा हिमयुग। इन हिम युगोंने पृथिवीके प्राणि-जगत्में और उथल-पुथल उत्पन्न की; जिसके कारण, कई प्राणि-जातियाँ पृथिवीतलसे सदाके लिए विलुप्त हो गईं। उनमें जिन्होंने आत्म रक्षाके लिए शरीर और मनका पूरा उपयोग किया, वह साधन-सम्पन्न बनकर अपने अस्तित्व-को कायम रखनेमें सफल हुईं। कोई एक लाख वर्ष पूर्व, अन्तिम हिम-युगसे बहुत पूर्व यूरोपमें एक प्रकारकी मनुष्य जातिका पता लगता है, जिसे हाइडेलबर्गीय मनुष्य कहते हैं। वैसे गोरीला और बबून भी डंडे या पत्थर फेंककर मारते देखे जाते हैं; किन्तु हाइडेलबर्गीय मनुष्य तोड़ फोड़कर तेज बनाये ऊबड़-खाबड़ पत्थरके हथियारोंका प्रयोग किया करता था। पचास हजार वर्ष पूर्व, चतुर्थ हिमयुगके समय, यूरोपमें नेअंडर्थल मनुष्य-जातिका पता लगता है। सर्दीकी अधिकताके कारण इसे पहाड़ोंकी प्राकृतिक गुफाओंमें शरण लेनी पड़ी थी। यह पत्थर और लकड़ीके हथियारोंका प्रयोग करता था। सर्दीसे बचनेके लिए जहाँ वह आगका प्रयोग जान गया था, वहाँ मारे हुए जानवरोंकी खालोंसे भी अपने शरीरको ढकता था। उसके शरीरकी बनावटसे मालूम होता है कि, अभी वह वाणीका प्रयोग करना बिल्कुल ही नहीं, अथवा अल्पतर, जानता था। अभी उसके मनमें धर्म, देवता आदिकी कल्पना नहीं हुई थी।

जिस समय यूरोपमें नेअंडर्थल् मनुष्य गुफाओंमें निवास करता था, उसी समय दक्षिणी भारतके कड़पा, गुंतूर, कर्नूल आदिकी गुफाओंमें भी मनुष्य वास करता था। दोनोंकी स्थितिमें फर्क यह था कि, जब चतुर्थ हिम-युगके कारण यूरोपमें असह्य सरदी पड़ रही थी, तब दक्षिण भारतकी सर्दी सह्य थी। चालीस हजार वर्ष पूर्वसे २५ हजार वर्ष पूर्वतक धीरे-धीरे यूरोपसे हिमकी कठोरता जाती रही, भारतमें भी परिवर्तन उसीके अनुसार हुआ।

पचीस हजार वर्ष पूर्व यूरोपके स्पेन आदि देशोंमें मनुष्योंकी एक जाति बसती थी, जिसे क्रोमेगनन् (Cromagnon) कहते हैं।

के अं ड र्थ ल मनुष्य उस समय भी मौजूद था, तो भी दोनोंका रक्त-संमिश्रण न होना शायद नेअंडर्थल्की कुरूपता और बीभत्सताके कारण हो। क्रोमेग्नन् मनुष्य शिकारी था। एक प्रकारसे छोटे घोड़े उसके प्रधान खाद्य थे; जिनके कि लाखों कंकाल सोलुत्र आदि स्थानोंमें मिले हैं। स्पेनकी गुफाओंमें इनके बनाये अनेक चित्र भी हैं। ये चित्र बहुत ही अँधेरी जगहमें हैं, जिससे पता लगता है कि, ये दीपकका भी प्रयोग करना जान गये थे। वह मुर्देको दबाया करते थे; मिट्टीके खिलौने बना लेते थे, किन्तु उन्हें बर्तन बनानेका ज्ञान न था। इससे अनुमान होता है कि, अभी मांस आदिको पकाकर वे खाना नहीं जानते थे। जिस समय क्रोमेग्नन्-जाति दक्षिण-पश्चिमीय यूरोपमें वास करती थी, उसी समय रायपुर ज़िलेके सिंगनपुर तथा दूसरे प्रदेशोंमें भी आदमी निवास करते थे। इन्होंने भी अपनी गुफाओंमें अनेक चित्र और छिले पाषाणोंके हथियार छोड़े हैं। दोनोंके चित्रमें सिर्फ जंगली जानवरों तथा शिकारके दृश्य ही मिलते हैं, जिससे मालूम होता है, अभी इन्हें देवताओं और धर्मकी कल्पना नहीं हुई थी। शायद अभी वे भाषाको विकसित न कर सके थे। भाषाके बिना परम्परा और पुरानी कथाओंका एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें कैसे पहुँचाया जा सकता है? परम्परा और कथाएँ ही तो देवताओं और धर्मकी सृष्टि करती हैं।

बारह हज़ार वर्ष पूर्व मनुष्योंमें एक नई प्रगति दिखाई पड़ती है। अब मनुष्य छिले पत्थरोंके हथियारके स्थानपर, घिसकर, चिकने किये पत्थरके हथियारोंका प्रयोग करता था। इसी कारण इस युगको नवपाषाण युग (Neolithic Age) कहते हैं। इस युगके साथ भूरे रंगकी इबेरियन जाति (द्रविड़-जाति, इसीकी एक शाखा कही जाती है) इस युगमें अगुआ है। इस जातिका मूल स्थान भूमध्यसागर-की पार्श्ववर्ती भूमि थी। चतुर्थ हिम-युगसे पूर्व यह प्रदेश बहुत ही हरा-भरा था। भूमध्य-वासी भूरी जाति तबतक अपनी भाषाको किसी हदतक विकसित कर चुकी थी। आगे चलकर उसकी सन्तान उत्तर, दक्षिण

और पूर्वकी ओर फैलने लगी। इस जातिने यूरोपमें जाकर क्रोमेगनन्‌का स्थान ग्रहण किया। सुमेरियन, सिन्धु-उपत्यका (मोहन्‌-जो-डरो) के निवासी तथा प्राचीन मिश्री भी सम्भवतः इन्हींकी सन्तान थे। जिन्होंने पाषाणके अस्त्रोंके अतिरिक्त इसने धनुष-बाणका भी आविष्कार किया। पहले, जब (ई० पू० ४००० से पूर्व) धातुका पता न लगा था, तब चकमक पत्थरको रगड़कर तेज किये टुकड़े ही बाणके फलके स्थानपर प्रयुक्त किये जाते थे। शिकारमें लगातार पहुँच जानेवाले कुत्तोंको इसने पहले-पहल पालतू जानवर बनाया। पीछे गाय, भेंड़ आदिको भी पालतू किया। जानवरोंके खानेके लिए घास काटकर जहाँ रख दी जाती थी, वहाँ भूमिके सरस होनेपर, उन्होंने लम्बी-लम्बी घासोंको उगते देखा। इस प्रकार पहले चारेके लिए ही कृषिका आरम्भ हुआ। पीछे, अनाज की उपयोगिता ज्ञात हो जानेपर उसकी खेती भी आरम्भ हुई। खेतीके फन्देमें पड़नेके साथ-साथ मनुष्य वन-वन विहरनेवाला स्वच्छन्द प्राणी न रह खूँटेपर बँधे पशुकी तरह एक जगह बस गया। अब पशुपालन कृषक-जीवनका एक गौण अंग रह गया। अपने शत्रुओं (कृषकों और पशु-पालकों, दोनों) से रक्षा पानेके लिए वह ग्राम (=गाँव) बनाकर रहने लगा। शत्रुकी संख्याकी वृद्धिके साथ जहाँ अपनी संख्या मिलाकर वह नगर बसाने लगा, वहाँ पारस्परिक लड़ाइयोंमें वीर और अधिक चमत्कार नेताओंका प्रभाव बढ़ते-बढ़ते राजाका पद कायम हुआ। सूसा (ईरान) के ध्वंसावशेषके प्राचीनतम स्तरमें इसी शिकारी-कृषक-जीवनका चिन्ह मिला है। अबतकके निकले ध्वंसावशेषोंको देखकर विद्वानोंका कहना है कि, पहला ग्राम मेसोपोटामियामें बसा था और उसी समय वहीं कृषिका भी आरम्भ हुआ था। यह समय ई० पू० ६ हजारके करीब होगा।

बहुत पुराने समयमें जब अभी उत्तरी-भारत और [illegible] समुद्रके गर्भमें थे; दक्षिणी भारत अफ्रीका और लंकाके [illegible] हुए [illegible] द्वीपका एक भाग था। इस बातका प्रमाण [illegible]

जीवधारियोंकी पथराई अस्थियोंकी समानतासे मिलता है। चतुर्थ हिम-युगके बाद जिन मनुष्य-जातियोंका हम भारतमें निवास पाते हैं, उनमें सबसे पुरानी दो जातियाँ हैं—एक हब्शी जैसी (Nigroid) दूसरी प्राग्द्राविड़ीय (वेद्दा, मुण्डा, आदि)। आदिचन्नल्लूर (मद्रास)में मिली खोपड़ीकी कपाल-संस्थितियाँ (Cephalic indices) वेद्दा लोगों जैसी हैं। चित्रोंके सादृश्य आदिके देखनेसे सिंगनपुर (जि० रायपुर) के चित्रकार भी मुन्डा आदि जातियोंसे सम्बन्ध रखते मालूम होते हैं। नवपाषाण काल (५,००० ई० पू० से पहले) में यही दो जातियाँ भारतमें बसी मालूम होती हैं। मालूम होता है, नवपाषाणयुगमें भूमध्यदेशीय भूरी जातिका*, स्पेन, मिश्र, मेसोपोटामिया, ईरान और भारतसे चीनतक दौर-दौरा था। चिकने पाषाणके हथियारोंके अतिरिक्त इसी जाति द्वारा सूर्य-नाग-पूजा तथा स्वस्तिक चिन्हका चारों ओर प्रचार हुआ था। पाँच हज़ार वर्ष पूर्व यही जाति सिन्धु-उपत्यकाके मोहन्-जो-दड़ो तथा हड़प्पा जैसे नगरोंमें रहा करती थी। विद्वानोंका कहना है कि, यही वह असुर-जाति थी, जिससे २००० ई० पू० में भारतपर हमला करनेवाले आर्योंका संघर्ष हुआ; और आजकलकी द्रविड़ तथा उत्तरीय भारतकी भर आदि जातियाँ उसीकी सन्तानें हैं।

मालूम होता है, भूमध्य-देशीय भूरी-जाति बहुत अधिक संख्यामें भारतमें नहीं आई थी; इसलिए उसपर शीघ्र मुण्डा और हब्शी रंगकी छाप पड़ गई। तभी तो असुर जातिको सुचतुर नागरिक मानते हुए भी आगन्तुक आर्योंने "चिपिटनास" तथा कृष्णकाय कहा। इस जातिके सभ्य होनेका पता तो इससे भी लगता है, जो उसने छोटानागपुरके प्राग्-

* इस भूरी जातिमें सेमेटिक (प्राचीन असीरियन, फिनीशियन तथा आधुनिक यहूदी और अरब), हेमेटिक (प्राचीन मिश्री और उनके वंशज आधुनिक कुब्त), ईथियोपियन, प्राचीन क्रेत, यूरोपके बास्क, सिन्धु-उपत्यकाके निवासी एवम् आधुनिक द्रविड़ हैं।

द्राविड़ीय ओरावोंको उनकी भाषाके स्थानपर अपनी भाषा बोलनेको बाध्य किया; जैसे कि पीछे प्रागद्राविड़ीय भीलों एवं द्रविड़ भरोंको आर्योंने आर्य भाषा-भाषी बनाकर किया। पाँच हज़ार वर्ष पूर्व द्रविड़-सभ्यता कहाँतक उन्नत थी, यह मोहन-जो-डड़ो और हड़प्पाकी खुदाइयोंसे मालूम होता है। जिस समय दक्षिणी यूरोपमें बास्क लोगोंके पूर्वज, सिन्धुतटपर असुर, क्रेटमें वहाँके सभ्य निवासी, मिश्रमें प्राचीन मिश्री, मेसोपोटामिया में सुमेरीय लोग निवास करते थे; और अन्तिम चार जातियाँ उस समय-की दुनियामें सबसे अधिक सभ्य जातियाँ थीं, उसी समय मध्य एसियासे काले सागरके उत्तरी तट तक शिकार और पशुचारण करती एक जाति निवास करती थी, जिसे ऐतिहासिक लोग हिन्दी यूरोपीय* नामसे पुकारते हैं। यूरोपनिवासी अमेरिका, अफरीका और आस्ट्रेलिया आदिकी गोरी जातियाँ; ईरानी, अफगान तथा उत्तरी भारतके निवासी इन्हींकी सन्तानें हैं। इस जातिकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसमें कई मत हैं। धार्मिक लोग मानते हैं कि, प्राचीन गोरी, भूरी (सुमेरीय, द्रविड़ आदि), पीली (मंगोल), काली (हब्शी) और दाक्षिणात्य (वेद्दा, मुंडा आदि), सभी-जातियाँ एक ही मनुष्य जोड़ेकी सन्तानें हैं; और लाखों वर्षों तक भिन्न-भिन्न जलवायुओं एवं भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें रहनेके कारण उनमें इतना फर्क हो गया। उनके मतसे मनुष्य सृष्टि पृथ्वीके एक स्थान पर हुई थी; किन्तु आधुनिक गवेषक चारों-पाँचों मनुष्य-जातियोंके मूल पुरुषोंको अलग-अलग मानते हैं।

पाँच हज़ार वर्ष पूर्व यह जाति किस अवस्थामें थी, इसका कुछ पता हमें भारतीय आर्योंके पुरातन ग्रन्थ वेद, ईरानी आर्योंके पुरातन ग्रन्थ अवस्ता और सभी हिन्दी-यूरोपियोंके समान कथानकोंमें मिलता है। गायों, भेड़ोंके अतिरिक्त ये लोग घोड़ोंको भी पाला करते थे। घोड़ोंका

---

* इनके आदिम निवासके पूर्व मंगोल जातिका आदिनिवास था, जिसकी सन्तानें तिब्बत, मंगोलिया, चीन, कोरिया, जापान आदिके लोग हैं।

पालन यह प्रथम सवारीके लिये न करके खाने फिर दही-दूधके लिए करते थे, दक्षिण पूर्वी रूसके लोग आज भी अधिकतर कूमिस्के लिए उन्हें पालते हैं। सहस्राब्दियों तक चरवाहोंका जीवन बिताकर ई० पू० २५०० में इनका एक दल पामीरके आस-पासके प्रदेशमें आ गया।* दूसरे दलका कुछ भाग पामीरसे उत्तर-पश्चिमके प्रदेशोंमें (जहाँ कि, पुराने तुखारी आर्य बसते थे), और कुछ रूससे पश्चिमकी ओर बढ़ गया। संख्या वृद्धिके साथ उन्हें नये चरागाहोंकी खोजमें और भी आगे बढ़ना पड़ा। पामीरके पास रहते हुए, मालूम होता है, आर्योंमें फूट पड़कर उनके दो दल हो गये थे। एककी सन्तान हिन्दी आर्य थी और दूसरेकी ईरानी आर्य। ई० पू० २००० के क़रीब हिन्दी आर्योंकी एक शाखा मेसोपोटामिया पहुँची और वहाँ सभ्य सुमेरीय जातिको परास्तकर उसने अपना अधिकार जमाया। यह मित्तन्नी (आर्य) जाति—जिसने सभ्य दुनियामें सर्वप्रथम घोड़ेका प्रवेश कराया—के देवता हिन्दी आर्यों जैसे थे; यह मित्तन्नी (Mittanni) राजा म त्ति उ अ ज़ा और सामीय जातिके हित्ताइत (Hittite) राजा सु न् बि लु लि उ मा के बोग़ज़्-कोई (Boghaz kui, मेसोपोटामिया)से प्राप्त अभिलेखसे मालूम होता है, जिसमें कि पिछले ईरानियोंके असम्मत इन्द्र आदि वैदिक देवताओंका नाम सम्मानपूर्वक आया है।

भारतीय आर्य जब सुवास्तु (स्वात, अफ़ग़ानिस्तान)की उपत्यकामें पहुँचे, तभीसे सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्य जातिसे उनका मुक़ाबिला शुरू हुआ। इन्हीं दोनों जातियोंका संघर्ष वेद और पुराने साहित्यमें देवासुर-संग्रामके नामसे प्रसिद्ध है। असुर यद्यपि अधिक चतुर और सभ्य थे; तो भी हज़ारों वर्षोंसे नागरिक जीवन बिताते हुए वह अधिक व्यसनी तथा सैनिक प्रकृतिसे हीन हो गये थे। यही कारण था कि, वह

* इनके बारेमें ज्यादा जानने के लिए पढ़िए मेरी "मानवसमाज" और "वोल्गासे गंगा" पृष्ठ ३३—६८।

अपने सैकड़ों क़िले-बन्द नगरों और शिक्षित सैनिकोंके होते हुए भी, अशिक्षित, किन्तु लड़ाकू, आर्यों द्वारा पराजित हुए। इतिहासमें खाना-बदोश असभ्य जातियाँ अक्सर विजयी होते देखी गई हैं।

विजयी होकर अब आर्य पराजित द्राविड़ोंके संसर्गमें आ धीरे-धीरे सभ्य बननेके साथ अपने सरल और परिश्रमी जीवनको त्याग उनके आराम-पसन्द जीवनको अपनाने लगे। युद्धके बाद जब दोनों जातियाँ सिन्धु-उपत्यकामें बस गईं, तब विजेता और पराजितके झगड़ेने एक दूसरा ही रूप धारण किया। आर्योंने कृष्णयोनि* (=काली जाति) चिपटी नासिकावाली या निर्णास, खर्वकाय आदि कहकर पराजितोंसे घृणा करनी शुरू की। आजकल के अमेरिकाके गोरों और हब्शियोंकी भाँति उन्होंने वर्ण (=रंग)का प्रश्न उठाकर अनार्योंसे ब्याह-शादीकी कड़ी मनाही कर दी। तो भी इसका मतलब यह नहीं कि, आर्य अपने रक्तको शुद्ध रख सके। यह होना असम्भव ही कैसे था, जब कि, उनके घरोंमें अनार्य दासोंका प्रवेश निराबाध होता था; और उनके आस-पास अनार्योंकी बस्तियाँ अधिक थीं।

मोहन-जो-दड़ोकी खोदाईमें लोहेका कहीं पता नहीं है। आर्योंके पुराने साहित्यमें भी लौह और अयस् शब्द ताँबे और लोहे, दोनोंके लिए प्रयुक्त हुए हैं; इसलिए केवल लोहेके लिए कृष्ण-अयस् और केवल ताँबेके लिए ताम्र-लौह शब्दोंको गढ़ना पड़ा। लोहेका आविष्कार ई० पू० १४००के आस-पास हुआ था। उससे पूर्व ताँबे और पीतलके ही हथियार सिन्धु, मेसोपोटामिया, मिश्र क्रेत, सभी जगह व्यवहृत होते थे। आर्योंके आनेसे पूर्व ही सिन्धु-उपत्यकाके लोग एक प्रकारकी चित्रलिपिका व्यवहार करते थे। उसके बादकी किसी लिपि (जो सम्भवतः हालमें सम्भलपुर ज़िलेके गंगापुरमें मिली शिला-लिपि-सी थी)से आर्योंने अपनी ब्राह्मी-लिपि तैयार की। भारतमें आनेसे पूर्व ही भय और वीरपूजाने

* ऋगवेद (२।२०।७)।

आर्योंके लिए अनेक देवी-देवता पैदा कर दिये थे, सिन्धु-उपत्यकाके संसर्गने उनमें कई अनार्य देवोंकी वृद्धि की।

हम पहले कह आये हैं कि, अति पुरातनकालमें भारतमें हब्शी और दाक्षिणात्य प्राग्द्राविड़ीय मुंडा (आदि जातियाँ) वास करती थीं। फिर ७, ८ हज़ार वर्ष पूर्व अल्पसंख्यक, किन्तु सुसभ्य; भूरी द्रविड़-जाति आई। अब आर्योंके आनेसे एक चौथी जातिका समागम हुआ। इनमें आर्य गौरवर्ण, दीर्घकाय, तुङ्ग-नास (=ऊँची नाकवाले), अभिनील नेत्र तथा भूरे बालोंवाले थे। बाक़ी तीन जातियाँ बहुत कुछ आपसमें मिल गई थीं। वह कृष्णकाय, चिपटी नासिकावाली, खर्वदेह, होती थीं। इसके अतिरिक्त उनमेंसे किन्हीं-किन्हींमें अँगूठिया बाल, स्थूल ओष्ठ तथा आगे निकला मुँह—यह हब्शी-शरीर-लक्षण भी मिलता था, यद्यपि हब्शी रुधिरकी प्रचुरता न होनेके कारण वह अधिक न दिखाई पड़ता था।

मानव-तत्त्वके पण्डितोंने भिन्न भिन्न जातियोंकी शरीराकृतिकी परीक्षाकर उनमें अनेक भेदक लक्षण या अभिव्यञ्जन (Index) पाये हैं। इनमें जो अभिव्यञ्जन अधिक स्थिर रहता है, उसे व्यवस्थित-अभिव्यञ्जन कहते हैं; जो नहीं, उसे अव्यवस्थित-अभिव्यञ्जन। (१) लम्बाई (क़द), (२) कपाल-संस्थिति, और (३) नासिका-संस्थिति ये तीन व्यवस्थित-अभिव्यञ्जन कहे जाते हैं।* इनमें भी पहिलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा अधिक प्रामाणिक है। अव्यवस्थित अभिव्यञ्जन हैं—

* ५ फीट ७ इंचसे अधिक ऊँचा आदमी दीर्घकार कहा जाता है; ५ फीट ५ इंचसे ५ फीट ७ इंच मध्यमाकार, ५ फीट ३ इंचसे ५ फीट ५ इंच अनुमध्यमाकार, ५ फीट ३ इंचसे कम खर्वाकार। ८० से अधिक कपालसंस्थितिवाला आवृत (गोल) शीर्ष, ८० से ७५ मध्यशीर्ष, ७५ से कम लम्बशीर्ष। ७० नासिकासंस्थिति वाला तुंगनास होता है, मध्यनास (द्रविड़) ७०-८५, और आयतनास (मंगोल) ८५ से अधिक संस्थिति-वाले होते हैं।

शरीर आँखों और बालोंके रंग तथा आँखों और बालोंके आकार-प्रकार आदि। आर्य-अनार्यके अव्यवस्थित व्यञ्जनोंके बारेमें हम पहले कह चुके हैं। यहाँ उनके व्यवस्थित व्यञ्जनोंके बारेमें कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता है।—यहाँ कपाल संस्थितिसे मतलब कपालकी लम्बाईको १०० मानकर उसकी चौड़ाईका परिमाण मालूम करना; नासिका-संस्थितिमें भी नाककी लम्बाईको सौ मानकर नथुनोंपर नाककी चौड़ाईका अनुपात लगाना (लम्बाई नापते वक्त भौंके नीचे नाकके दबे हुए भागसे आरम्भ कर नासाग्रतक नापना चाहिए)। ठीक परिणामपर पहुँचनेके लिए यह आवश्यक है कि, एक जातिके रक्त-सम्बन्धियोंके सौ-डेढ़ सौ व्यक्तियोंको बिना किसी चुनावके लिया जाय।

नापसे मालूम हुआ है कि भूमण्डलके श्वेतांगोंकी लम्बाई प्रायः १६१० मिलीमीटर (५ फीट ४·४ इंच) से नीचे नहीं होती, कपाल-संस्थिति ७१·३ और नासिका-संस्थिति ७५ से ऊपर नहीं जाती। दूसरों का कद १५४० मिलीमीटर (५ फीट १·६ इंच) तक छोटा तथा कपाल और नाककी संस्थितियाँ क्रमशः ७५·८ और ७० से कम नहीं होतीं। श्वेतांगों की कपाल-संस्थितिमें गोल सिर भी पाया जाता है, जैसे भारतमें गुजरातियों और मराठोंके सिर तथा यूरोपके जर्मन आदि कुछ जातियोंके सिर; इसलिए बाकी दो बातोंका भी खयाल रखना होगा।

विभिन्न स्थानोंके श्वेतांगोंके निश्चित काय-मान इस प्रकार पाये गये हैं—

	लम्बाई (मिलीमीटर)*	कपाल	नासिका
सिन्धु-अफगान	१६४२ से १६८३ तक	८० से ८२·८	६७·८ से ७४·३
सिन्धु ईरानी	१६४२—१६८३	८०—८२·८	६७·८—७३·३
ईरानी-भूमध्यदेशीय	१६३३—१७४५	७६·२—७९·८	५९·६—७३·३
आर्मेनियन-पामीर	१६६०—१७०८	८४·१—८९·५	६२·६—७२
बाल्कियन	१६४६—१६५८	८२·५—८४·२	५७·६—६४·५

* २५ मिलीमीटर = १ इंच।

उत्तरी भारत के आर्योंके कुछ काय-मान देखिए—

	लम्बाई	कपाल	नासिका
राजपूत (राजपूताना)	१७४८	७२·४	७१·६
पंजाबी	१६८४	७४·२	७०·२
सिक्ख	१७०६	७२·७	६८·८

इसकी तुलना भारतकी कुछ आर्य-भिन्न जातियोंसे कीजिए—

	लम्बाई	कपाल	नासिका
वेद्दा (सीलोन)	१५७१	७५·१	८४·१८
मुंडा	१५८६	७४·५	८६·६
तामिल	१६३६	७५·६६	७६·६७
द्रविड़ हिन्दू	१६२३	७५·२	८२·३७

हिमालय, बंगाल और आसामके भारतीयोंमें काफी मंगोल-रुधिर भी है। यहाँ कुछ मंगोल-जातियोंके अभिव्यञ्जन देखिए—

	लम्बाई	कपाल	नासिका
बुर्यत् (साइबेरिया)	१६३१	८४·५	७२·५०
लदाखी (काश्मीर)	१६३४	७६·७६	७५·५४
लिप्चा (दार्जिलिंग)	१५७०	७९·६	६७·२
जापानी	१५८५	७६·५	७२·६४

आरंभिक आर्योंके बाद भी, सिकन्दरके समय, हजारों यूनानी, सिथियन (मग-शक), जाट, गूजर, आभीर आदि आर्य-जातियाँ भारतमें आती गईं और उत्तर-भारतीय आर्योंमें मिलती गईं। द्रविड़ तथा दूसरी अनार्य-जातियाँ या तो विजेताओंकी आज्ञाकारी बन गईं अथवा मध्यप्रदेशकी पहाड़ियों और दक्षिणकी ओर हटती गईं। इन जातियोंके समागमसे रक्त-सम्मिश्रण होना अनिवार्य था। हाँ, पंजाब और राजपूतानेसे हम जितना ही अधिक पूर्वकी ओर बढ़ते हैं, उतनी ही हम आर्य-रक्तकी मात्राको कम होते देखते हैं; और द्रविड़-रक्तकी मात्राको बढ़ते। बिहारकी

सीमा पारकर बंगाल और आसाममें फिर उत्तरसे आई मंगोल जातिका रक्त-सम्मिश्रण होने लगता है। यह रक्त-सम्मिश्रण सभी जातियोंमें एक-सा नहीं है। उदाहरणार्थ पूर्वीय युक्तप्रान्त और बिहारकी अहीर-जातिको ले लीजिए। उनमें और जातियोंकी अपेक्षा आप अधिक गोरे रंग और भूरे बाल भी पायँगे। व्यवस्थित-अभिव्यञ्जनों (लम्बाई, कपाल और नासिकाके मानों) को भी देखनेसे आपको मालूम होगा कि, उन प्रदेशोंमें यही एक जाति है, जिसमें सबसे अधिक आर्य-रुधिर है।

वैज्ञानिकोंने मनुष्यकी उत्पत्ति और विकासको* मत्स्य, मण्डूक, सरीसृप, पक्षी और स्तनधारी आदि क्रमसे जो माना है, वह विशेषतः दो बातोंके आधारपर है। जीव-कल्पके पाषाणोंकी तहोंमें हम उसी क्रमसे उन्हें पाते हैं। यह पाषाण समकालीन घटनाओंके इतिहास-ग्रन्थ हैं, जिनका एक-एक स्तर उस ग्रन्थका एक-एक पन्ना है। फर्क इतना ही है कि, बीच-बीचमें आनेवाले हज़ारों प्रचण्ड भूकम्पोंने इस ग्रन्थके पन्नोंको तोड़फाड़ डाला है। अमेरिकाकी पश्चिमी रियासतोंके कुछ स्थानोंकी भाँति पृथ्वीपर कहीं-कहीं करोड़ों वर्षोंके पाषाण स्तर अक्षुण्ण मिलते हैं। वहाँ ऊँट, घोड़े, आदिकी भिन्न-भिन्न कालकी पथराई हड्डियाँ इस विकास-सिद्धान्तकी पुष्टि करती हैं। पथराई हड्डियोंके बाद दूसरा प्रमाण स्वयं प्राणियोंकी गर्भ आदिकी आरम्भिक अवस्था है। मेढक चूंकि मछलीसे विकसित हुआ है; इसलिए उसको मेढकके रूपमें आनेसे पूर्व मछलीका रूप धारण करना पड़ता है। उस वक्त उसकी आकृति ही मछलीकी तरह नहीं होती बल्कि वह मछलीकी ही भाँति, फटे गलेसे, पानीके भीतर भी साँस लेता है। अपनी वर्तमान अवस्था तक पहुँचनेके लिए मनुष्य-जातिको जिन-जिन मंज़िलोंको पार करना पड़ा, अब भी प्रत्येक मनुष्यको गर्भाशय और शैशवमें उन सभी अवस्थाओंसे गुजरना पड़ता है। गर्भमें वह, आरम्भिक अवस्थामें, मछलीकी

* विस्तारके लिए देखिए मेरी "विश्वकी रूपरेखा"।

तरह रहता और अन्यान्य अवस्थाओंसे ४-५ मासकी अवस्थामें वह सपुच्छ बानर-सा होता है। प्रसवके समय बनमानुषकी भाँति उसके हाथ लम्बे-लम्बे होते हैं। शैशवमें वह कितने ही विकसित बानरोंकी भाँति चतुष्पद और द्विपद—दोनोंकी तरह चलता है; और, शायद सोचता भी है। यहाँ तक कि, तीन चार वर्षकी अवस्थामें वह कितनी ही शारीरिक और मानसिक क्रियाओंमें पचास हज़ार वर्ष पूर्वके अपने चालीस वर्ष बूढ़े पूर्वजोंकी अवस्थाकी आवृत्ति करता है जैसे हम कितनी ही बातोंमें अपने पूर्वजोंसे आगे बढ़े हैं उसी तरह उन्नति करके आजसे दस हज़ार वर्ष बाद आनेवाली हमारी सन्तान १० ही वर्षकी उम्रमें हमारे चालीस वर्षके पण्डितोंकी तरह सोचने लगेगी और भूत-कालके अनुभवों से फायदा उठावेगी।

मनुष्यके विकासके कुछ महत्त्व-पूर्ण काल

पृथिवीकी उत्पत्ति	२ अरब वर्ष पूर्व
प्राणीकी उत्पत्ति	३ करोड़ वर्ष ”
विकराल सरीसृपोंकी उत्पत्ति	२ करोड़ वर्ष ”
सिवालिकके जन्तु	३० लाख वर्ष ”
शिवालिकका नर-बानर	४-५ लाख वर्ष ”
जावाका नर-बानर	४-३ लाख वर्ष ”
हिमालयके भाँगर (तराई)की उत्पत्ति	”
हिम-युग (प्रथम)	३ लाख वर्ष ”
” (द्वितीय)	२ लाख वर्ष ”
हाईडल-वर्गीय मनुष्य	१॥-१—लाख वर्ष ”
हिम-युग (तृतीय)	१ लाख वर्ष ”
” (चतुर्थ)	५० हज़ार वर्ष ”
नेअण्डर्थल, कड़ग, कर्नूलके मनुष्य	” ”
चतुर्थ हिमयुगका दबना	४०-२५ हज़ार वर्ष ”

क्रोमेग्नन् (दक्षिणी यूरोप) मनुष्य	३०-२५ हज़ार वर्ष पूर्व
सिंगनपूरमें प्रागद्राविड़ीय मनुष्य	” ”
वास्तविक मनुष्यके इतिहासका आरम्भ	” ”
सूर्य नाग-पूजक तथा स्वस्तिक चिन्ह-वालोंका यूरोप, भारत, चीन, अमेरिका आदिमें फैलना	१२-८ हज़ार ई० पू०
धनुष-बाणका आविष्कार	१०,००० ई० पू०
नव-पाषाण-युग	५,००० ई० पू०
पशुपालन, कृषि, मिट्टीके बर्तनोंका आरम्भ	” ”
गाँव बसाना तथा सभ्यताका आरम्भ	” ”
ताँबेका आविष्कार	४००० ई० पू०
मोहन्-जो-दड़ोकी सभ्यता	३००० ई० पू०
पीतलका आविष्कार	२५०० ई० पू०
हिरातमें आर्योंका प्रवेश	” ”
सुवास्तुमें आर्योंका वास	२००० ई० पू०
मित्तन्नी आर्योंका मेसोपोटामियामें पहुँचना	” ”
आर्योंका सिंधु-उपत्यकापर अधिकार	१८०० ई० पू०
आर्योंका यूनानपर अधिकार	१५०० ”
लोहेका आविष्कार	१४०० ई० पू०
गौतमबुद्ध (बुद्धिवादी)	५६३-४८३ ई० पू०
सिन्धु-प्रदेशपर ईरानियोंका अधिकार	५३० ई० पू०
यूनानियोंकी भारतमें विजय	३२३ ई० पू०
काग़ज़का आविष्कार (चीन)	२०० ई० पू०
शकों, मगोंका भारतमें आगमन	२००-१०० ई० पू०
मंगोलों द्वारा बारूदका यूरोपमें प्रवेश	१३०० ई०
यूरोपमें टाइपका छापाखाना	१४३८ ई०
दूरबीन-आविष्कार	१६१२ ई०

भापका इंजन	१७८५ ई०
प्रथम स्टीमर (फोर्ट)	१८०२ ई०
प्रथम रेल-इंजन	१८०४ ई०
विकासवादके आचार्य डार्विन	१८०६-८२ ई०
साम्यवादके आचार्य कार्ल मार्क्स	१८१०-८३ ई०
प्रथम रेल लाइन (स्टाक्टन्से डार्लिङ्टन् तक)	१८२५ ई०
दियासलाई	१८३४ ई०
बिजली	१८३४ ई०
स्वेज नहर	१८६७ ई०
ग्रामोफोन	१८७८ ई०
रेडियम	१८६८ ई०
मनुष्यवाहक वायुयान	१६०६ ई०
प्रथम साम्यवादी शासन	१६१७ ई०

—:०:-

साम्यवाद ही क्यों ?

(१)

पूँजीवादकी उत्पत्ति

पूँजीवाद धन-अर्जनका वह खास ढंग है, जिसमें एक मनुष्य, दूसरा कोई प्रभुत्व न रखते हुए भी, सिर्फ अपनी पूँजीके बलपर चीज़ोंके बनानेके बहुमूल्य साधनोंपर अधिकार कर, बहुसंख्यक मनुष्योंके श्रमके कितने ही भागको मुफ्त ही अपने निजी लाभ और अपनी मददगार पूँजीके बढ़ानेमें उपयोग करता है।

यह निश्चित ही है कि इस प्रकारका पूँजीवाद शिकारी* अवस्थाके मनुष्यमें सम्भव न था। जब मनुष्य शिकारी अवस्थासे गल्लाबानी और किसानी अवस्थामें आया, तो उसके पास वैयक्तिक, स्थावर और जंगम सम्पत्ति जमा होने लगी। फिर सम्पत्तिके स्वामी, धनी, सामन्त और राजा अर्थात् शोषकवर्ग अस्तित्वमें आया, दूसरी ओर शोषकोंके लिए काम करने वाले श्रमिक रह गये। समाजमें वर्ग-भेद और अपने-अपने स्वार्थके लिए वर्गसंघर्ष शुरू हुआ। यद्यपि ये सामन्त और राजा भी दूसरे मनुष्यके श्रमके कुछ भागको बिना मजदूरी दिये अपने निजी लाभके लिए इस्ते-माल करते थे; किन्तु वह एक तो, पूँजीके बलपर नहीं, अपनी राज-शक्तिके बलसे वैसा करते थे; दूसरे, बिना मज़दूरीके लिये गये उस श्रमसे आगे भी श्रमकी खरीद-फ़रोख्त जारी रखनेके लिए वह पूँजी नहीं तैयार

* शिकारी आदि अवस्थाओंके बारेमें देखिए मेरा "मानव समाज" पृष्ठ २२-२५, ५४-५५, ६२-६८

करते थे। यद्यपि सामन्तशाहीके ज़मानेमें खरीद-बिक्री करनेवाले बनिये और सूदपर रुपया देनेवाले महाजन होते थे, जो दूसरेके "श्रमके कुछ भागको बिना मज़दूरी दिये अपने निजी लाभके लिए" इस्तेमाल करते थे; तो भी बनिया और महाजन पूँजीवादी नहीं हो सकते थे, क्योंकि उन्होंने ज़िन्दगीके लिए ज़रूरी चीज़ोंके उत्पन्न करनेके हथियारोंको अपने हाथमें नहीं कर पाया था। उस समय जुलाहा अपने करघेका, कुम्हार अपनी चाकका, लुहार भाथी, घन-निहाईका मालिक होता था। यदि कहीं यह औज़ार जमाकर उनसे चीज़ें बनवाई भी जाती थीं, तो भी वह अधिकतर बेगारके तौरपर होता था, जिसमें राजा या सामन्त अपने प्रभुत्वका भी इस्तेमाल करते थे। उस समय चीज़ें बनानेवाले औज़ारोंके बड़े-बड़े दाम न होते थे, इसीलिए कारीगर अधिक दबाव देनेपर अपने निजी औज़ारोंको तैयारकर स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना काम कर सकते थे, और इसीलिए धनियोंकी रुचि ऐसे कारखानोंके स्थापित करनेमें अधिक नहीं हो सकती थी।

पूँजीवाद तो तबसे शुरू होता है, जब दुनियामें भापके यन्त्रोंका आविष्कार होता है। यन्त्रोंके आविष्कारसे चीज़ोंके पैदा करनेकी गति हाथकी अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है। जहाँ पहले एक कारीगर जुलाहा अपने हाथके करघेसे दिनमें मुश्किलसे सात-आठ गज़ कपड़ा बुन सकता था, वहाँ भापसे चलनेवाले करघेसे एक अनाड़ीसा आदमी पचास-साठ गज़ तक बुन सकता था। मेशीनसे बने इस कपड़ेका सस्ता पड़ना ज़रूरी ही था, क्योंकि चीज़ोंका मोल तो उसमें लगी आदमीकी मेहनतके परिमाणपर निर्भर है। चीज़ोंके सस्ती होनेपर उनके जल्दी बिकनेमें आसानी होती है, और जितने ही थोड़े समयमें, जितनी ही अधिक चीज़ें बिकें, चीज़ोंके तैयार करनेवालोंको, हर एक चीज़ पर थोड़ा नफ़ा रखनेपर भी कुल मिलाकर, उतना ही अधिक नफ़ा होता है। ज्यादा नफ़ा होनेपर भी मेशीनोंका दाम अधिक होनेसे कारीगर स्वयं उसे खरीद नहीं सकता था। इस प्रकार पूँजीवादका

आरम्भ भापकी भौतिक शक्तियों द्वारा संचालित मेशीनोंके आविष्कारके साथ होता है।

पूँजीवादका प्रसार

चाहे वाष्पकी सञ्चालक शक्तिका मामूली ज्ञान मिश्रवालोंको दो ढाई हज़ार वर्ष पहले ही हो गया हो; किन्तु व्यवसायके कामोंमें उसका इस्तेमाल सबसे पहले यूरोपवालों ही ने किया। सन् १७६५ ई०में इङ्गलैण्डके जेम्स वाट्ने भापके इञ्जनका पहले पहल आविष्कार किया। पहले तो लोग इसकी उपयोगिताको न समझ सके; किन्तु वह बहुत दिनों तक छिपी न रह सकी। लोगोंने समझ लिया कि जैसे घोड़े या बैलकी ताक़तको जोतकर आदमी आटेकी चक्की, हल और गाड़ीको चला सकता है; उसी तरह उन्हें आग-पानीसे उत्पन्न इस भापकी ताक़त से चलाया जा सकता है। सन् १६०० ई०में ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापनाके बादसे ही मसाले आदिके साथ हिन्दुस्तानी सुन्दर कपड़ोंकी इङ्गलैण्डमें बहुत माँग थी। उसमें नफ़ा भी काफ़ी था। इङ्गलैण्डके औद्योगिक दिमाग़में यह बात चक्कर काटने लगी कि यदि इस प्रकारका चरखा और करघा बनाया जा सके, जिसमें वाष्प-इञ्जनकी ताक़त जोड़ी जा सके, तो हम कपड़ेको सस्ते दाममें तैयार कर सकते हैं। अन्तमें वह सफल हुआ, और सन् १७८५ ई० में वाष्प-सञ्चालित चरखे करघेकी मेशीनका पहला कारखाना इङ्गलैण्डमें क़ायम हुआ। नतीजा वही हुआ, यानी कपड़ा कम लागतमें तैयार होने लगा; क्योंकि हाथके करघोंसे जितना कपड़ा चार आदमी तैयार कर सकते थे, उतना अनेक दोषोंके रहते भी शुरूकी उस मेशीनसे एक ही आदमी तैयार करने लगा। मज़दूरोंको यह सोचनेमें देर न लगी कि इस आविष्कारका मतलब है, चार आदमियोंकी जगह सिर्फ़ एक आदमीको काम मिलना। मेशीनोंके ज़रिये नफ़ा होते देख कितने ही और कारखाने खुले, और कुछ ही बर्षोंमें कितने ही मज़दूर बेकार हो गये। इसपर मज़दूरोंने उत्तेजित

होकर एक मिलपर धावा बोल दिया और मेशीनोंको तोड़-फोड़कर खराब कर दिया* ।

जिस समय भापसे चलनेवाली मिलोंके खिलाफ़ इङ्गलैण्डके मज़दूरोंमें इस प्रकार उत्तेजना फैल रही थी, उसी समय १८०२ ई० में फल्टनने भापसे चलनेवाले जहाजको तैयार किया और जार्ज-स्टीफेन्सन् रेलके इञ्जनके बनानेमें ही सफल नहीं हुआ, बल्कि सन् १८२५ ई० में उसने स्टाकृटन् और डार्लिङ्टन्के बीच लोहेकी लाइनपर छोटे डब्बोंके साथ एक इञ्जनको १२ मील प्रति घण्टेकी चालसे दौड़ा भी दिया । पूँजीपतियोंने देखा, यह तो तैयार मालको बड़ी जल्दी, कम खर्चमें, एक जगहसे दूसरी जगह भेजनेमें भारी सहायक हो सकते हैं। लोहेके जहाज़ बनने लगे और अब आग लगनेका डर भी जाता रहा, क्योंकि जहाज़ लकड़ीकी जगह लोहेके बनने लगे थे । अग्निबोटोंके प्रचारने कल-कारखानोंकी तरक्क़ीमें जहाँ मदद पहुँचाई, वहाँ कुछ समयके लिए मज़दूरोंको भी उसने शान्त कर दिया, इसलिए कि इन साधनोंके द्वारा तैयार माल दुनियाके दूर-दूरके बाज़ारोंमें पहुँचने लगा । उस समय इङ्गलैण्ड ही कारख़ानोंका प्रधान देश था, इसलिए दुनियाके बाज़ारोंमें उसके प्रतिद्वन्द्वी न थे । मेशीनसे तैयार इस सस्ते मालकी इतनी माँग थी कि हर साल नये-नये कारखाने खुलने लगे । उनमें काम करनेके लिए अधिक-से-अधिक संख्यामें मज़दूर लगाये जाने लगे ।

कैसे इङ्गलैण्डमें पूँजीवादका आरम्भ हुआ और कैसे भापसे चलनेवाली रेलों और जहाज़ोंने उसकी वृद्धि की, यह हम कह चुके हैं । अब तक धनी बननेके ज़रिये राज्यकी नौकरी, ज़मींदारी, खरीद-बेंच और सूदपर रुपया देना था; लेकिन यह सब कल-कारखानोंके नफ़ेके सामने कुछ न थे । इस भारी लालचके कारण जहाँ इङ्गलैण्डमें बहुत

---

* देखिए "मानव समाज" पृष्ठ ३६३ ।

† विस्तारके लिए पढ़िये "मानव समाज" पृष्ठ १८५-६०, २००-४

से लोग कारखानेदार बननेकी कोशिश करने लगे, वहाँ यूरोपके दूसरे देश भी, चाहे कुछ देरसे ही सही, उसका अनुसरण करने लगे। फ्रांस उस समय पूरब और पश्चिम दोनोंमें अंग्रेज़ोंका प्रतिद्वन्द्वी था। वह कब चुप रहनेवाला था? उसने भी कारखाने स्थापित करने शुरू किये। इसके बाद तो जर्मनी, हालैण्ड, आस्ट्रिया आदि यूरोपके सभी देश धन कमानेके इस सरल और द्रुततर साधनको अपनाने लगे।

उन्नीसवीं सदीके पहले आधे भाग तक कल-कारखानेका प्रचार अर्थात् पूँजीवादका विस्तार यूरोपमें ही होता रहा। वहाँ अधिक कारखानोंके खुलनेसे दो नतीजे हुए; एक तो इतने ज्यादा मालके लिए बाजार काफ़ी न होनेसे यूरोपके देशोंकी आपसमें प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने लगी, दूसरे बाज़ारकी कमी और दिन-पर-दिन मेशीनोंमें अधिक सुधार होनेसे बहुतसे मज़दूर कामसे वञ्चित हो बेकार पड़ने लगे।

भारतमें पूँजीवादका प्रवेश

उन्नीसवीं सदीके मध्य तक, पराधीन हो जानेपर भी, भारत अपने नशेमें मस्त था। उसने अपने यहाँ आये माल और यूरोपके आदमियोंसे मेशीन-युगकी कुछ खबर तो ज़रूर पाई होगी; किन्तु उसके व्यापारियोंका ध्यान कल-कारखानोंकी ओर न गया। शायद अभी उनमें यन्त्रोंकी जानकारी न आई थी। व्यावसायिक बुद्धि, प्रगतिशील विचार और यूरोपीय जातियोंके संसर्गमें प्रथम आनेसे हिन्दुस्तानियोंमें पारसियोंने सबसे पहले भारतमें मिलोंके महत्वको समझा। कावसजी मनाभाई दावरने सन् १८६५ ई० में बम्बईमें पहली कपड़ेकी मिल खोली।* देखा-देखी अहमदाबादके हिन्दू व्यापारियोंने भी अपनी मिलें क़ायम कीं।

यद्यपि उन्नीसवीं सदीके पिछले हिस्सेमें भारतमें मिलोंकी स्थापना

* यद्यपि भारतमें कपड़ेकी सबसे पहली मिल बंगालमें हुगलीके तटपर घौड़िया नामक स्थानमें एक यूरोपियनने सन् १८१७ में खोली थी; किन्तु भारतीयोंमें कपड़ेकी पहली मिल खोलनेवाले दावर ही थे।

या पूँजीवादका प्रसार आरम्भ हो गया; किन्तु उन्नीसवीं सदीके अन्त तक उसकी चाल बहुत धीमी थी। कारण थे—(१) अच्छी तरह संगठित और एक सदीका तजुर्बा रखनेवाले विदेशी कारखानोंके मालसे वह बाज़ारमें मुक़ाबला न कर सकते थे; (२) मेशीनोंका अभ्यास उन्हें बहुत कम था; (३) बैंक, बीमा आदि आजकलके व्यापारके साधनोंसे वह उतना काम न ले सकते थे; (४) विदेशी व्यापारी, जिनका भारतमें भारी प्रभाव था, यहाँ अपने देशके प्रतिद्वन्द्वी देखने पसन्द न करते थे।

बीसवीं सदीके पहले पन्द्रह वर्षोंमें शिक्षा और विज्ञानके प्रचारने कल-कारखानोंके फैलानेमें यद्यपि ज्यादा मदद की, तो भी रास्तेमें कितनी ही रुकावटें होनेके कारण उसकी गति उतनी तेज़ न हो सकी। वस्तुतः कल-कारखानोंका अधिक प्रसार तो पिछले महासमरसे भारतमें होने लगा जब कि यूरोपकी जातियोंके युद्धमें पड़ जानेसे वहाँके कारखानोंके मालका भारतमें आना रुक गया, और, इस तरह कुछ वर्षोंके लिए मैदान साफ़ हो गया। उस समय युद्धकी दृष्टिसे भी सरकारको भारतमें कल-कारखानोंकी तरक्कीको उत्साहित करना पड़ा। जब एक बार चक्कर चल गया, तो उसका रोकना मुश्किल था। यही कारण था कि १९१४ ई० के बाद हिन्दुस्तानियोंने तरह-तरहकी चीज़ोंके तैयार करनेके लिए हज़ारों कारखाने बड़ी-बड़ी पूँजी लगाकर भारतमें खोले। आज भारतमें पूँजीवाद बचपनसे अपनी जवानीकी ओर पैर बढ़ा रहा है। और इसके साथ भारतमें भी आज वह समस्याएँ खड़ी हो गई हैं, जो पच्छिमके व्यवसाय-प्रधान देशोंके सामने पहलेसे पेश थीं।

(२)

साम्यवाद क्यों पैदा हुआ ?

संसारमें बिना कारणके कोई कार्य (बात) नहीं हुआ करता। पूँजीवाद भी तब पैदा हुआ था, जब उसके उत्पन्न करनेवाले कारण पैदा हो गये थे—अर्थात् (१) थोड़ी मेहनत, या बिना मेहनतके धनी हो जानेकी मनुष्यकी स्वाभाविक इच्छा; (२) मशीनोंके आविष्कार द्वारा थोड़ी-सी मेहनतसे बहुतसी चीज़ोंको तैयारकर सस्ते दाममें बेच उससे फ़ायदा उठानेका सुभीता; (३) मशीनों द्वारा बनी हुई चीज़ोंसे बाजारमें मुक़ाबला न कर सकनेके कारण स्वतन्त्र कारीगरोंकी प्रतियोगिताका खतम हो जाना; (४) अधिक जानकारीकी जरूरत न होनेसे अनाड़ीसे आदमियोंका भी मशीनों द्वारा सुन्दर चीज़ोंका बना सकना। इसी तरह साम्यवाद—जिससे यहाँ हमारा मतलब वैज्ञानिक साम्यवादसे है—तब प्रकट हुआ, जब उसको पैदा करनेवाले कारण आ मौजूद हुए।

जिस चीज़में मनुष्यकी मेहनत जितनी ही अधिक लगती है, उसकी क़ीमत उतनी ही अधिक होती है—यह समझना मुश्किल नहीं है। खोदनेकी बहुत भारी मेहनतके बाद और अक्सर बहुत-सी खुदाईकी मेहनत बरबाद करके हीरा कभी-कभी मिला करता है, अर्थात् एक हीरेमें वह सारी मेहनत शामिल है; इसलिए उसकी क़ीमत इतनी अधिक है। अगर एक आदमीकी आधे ही दिनकी मेहनतसे कोहनूर मिल जाते; तो उनकी क़ीमत इतनी न होती। हाथकी बनी चीज़ोंकी क़ीमत इतनी अधिक इसीलिए होती है, क्योंकि उनमें आदमीकी मेहनत अधिक लगती है। आदमीकी मेहनत कम परिमाणमें लगनेहीसे मशीनकी बनी चीज़ें इतनी सस्ती होती हैं। मशीनका यही प्रधान काम है कि चीज़ोंके पैदा करनेमें आदमीकी मेहनतको कम-से-कम इस्तेमाल किया जाय। नतीजा

यह होता है कि मेशीनोंके इस्तेमालसे उतनी ही चीज़ोंको पैदा करनेके लिए उतने आदमियोंकी मेहनतकी ज़रूरत नहीं पड़ती, जितनी कि उन्हीं चीजोंको हाथसे बनानेमें पड़ती। हाथके करघेको ही ले लीजिए। उनसे एक आदमी आठ घण्टा रोज़ काम करके मुश्किलसे दस बारह गज़ कपड़ा बुन सकता है, लेकिन उससे भी कम जानकार आदमी कपड़ेकी मिलमें जाकर उतने ही समयमें साठ-सत्तर गज़ कपड़ा बुन सकता है, और उसके बुननेकी ताक़त भी, मशीनमें जितना ही सुधार होता जायगा, उतनी ही बढ़ती जायगी। आठ घंटेमें एक आदमीका साठ-सत्तर गज़ कपड़ा बुननेका मतलब है, छै आदमियोंके कामका एक आदमी द्वारा करना, और इसका दूसरा मतलब हुआ मशीन द्वारा पाँच आदमियोंको कामसे वंचित रखना।

मेशीनें आदमियोंके कामको छीन लेती हैं, यह बात समझनेमें उस समयके इंग्लैण्डके अशिक्षित मज़दूरोंको भी देर न लगी, और कुछ ही वर्ष बाद उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें, हम इंग्लैण्डके मज़दूरों और कारीगरोंको कई मिलोंको तोड़ फोड़ कर नष्ट करते देखते हैं; लेकिन तो भी ये भाव उतने भयंकर नहीं हो सके। इसका कारण यह था कि उस समय तक मेशीनोंका प्रचार एकाध मुल्कोंमें ही हो सका था, और चीज़ोंकी खपतके लिए दुनियाके सभी बाज़ार खुले हुए थे, बल्कि यों कहिये कि वे कारखाने अभी इतनी चीज़ें पैदा भी नहीं कर सकते थे, जितनीकी बाज़ारोंमें माँग थी। इसीलिए उस शुरूके ज़मानेमें नफेके निश्चित होने और घाटेका भय न होनेसे नये-नये कारखाने खुलते जाते थे, और हर नये कारखानेके खुलनेका मतलब था और अधिक मज़दूरोंको काम मिलना। इसी कारणसे उन्नीसवीं सदीके पहले पचीस वर्षोंमें वहांके मज़दूरोंके भाव पूँजीपतियोंके खिलाफ उतने सख्त न थे। लेकिन एक देशको कारखानों द्वारा फ़ायदा उठाते देख यूरोपके दूसरे देश ज्यादा दिनों तक चुप कैसे रह सकते थे? दूसरे मुल्कोंमें भी कारखानोंके खुल जानेसे बाज़ारमें ज्यादा माल आने लगा, इसलिए पहलेके स्थापित

कारखानोंने जितने मजदूरोंको बेकार कर दिया था, अब उतने नये कारखानोंके न खुलनेसे उतने बेकारोंको काम नहीं दिया जा सकता था। दूसरी बात यह थी कि मेशीनोंमें नित्य नये-नये सुधार होनेसे जहाँ एक पुरानी मेशीनमें उतने कामके लिए दस आदमियोंकी जरूरत थी, अब नई सुधरी हुई मेशीनमें उससे आधे ही आदमियोंकी जरूरत पड़ने लगी। इस तरह साइंसकी उन्नति और नये-नये आविष्कार बेकारोंकी संख्याको और बढ़ानेवाले सिद्ध हुए। हाँ, यह जरूर था कि जहाँ कुछ चीज़ोंको काममें लानेवाले पहले थोड़ेसे आदमी थे, अब सस्ती होनेके कारण लोग उनको अधिक इस्तेमाल करने लगे। तो भी खरीदारोंकी संख्यामें उस अनुपातमे वृद्धि नहीं हो रही थी जिस अनुपात और परिमाणमें बेकारोंकी संख्या बढ़ती जा रही थी।

अब मज़दूर देखने लगे कि एक ओर तो उन्हें कारखानोंमें काम नहीं मिल रहा है, और दूसरी ओर स्वतन्त्र कारीगरी या खेतीका ज़रिया उनसे छीन लिया गया है। पेटकी भूख एक साधारण बुद्धिवाले पुरुषको भी कुछ सोचनेके लिए मजबूर करती है। मज़दूरोंने एक ओर उक्त प्रकारसे अपनेको बेबस देखा, और दूसरी ओर कितने ही लोगोंको कुछ ही दिनोंमें करोड़पती बनते देखा। यह समझनेमें उन्हें दिक्कत न हुई कि यह धन उन्हींकी मेहनतसे इकट्ठा हुआ है।

पूँजीवादने जहाँ मज़दूरोंके लिए इतनी तकलीफ़ोंका सामान इकट्ठा कर दिया, वहाँ उसने उनके लिए एक बड़ा लाभ भी किया, और वह था बड़ी-बड़ी तादादमें मज़दूरोंको कारखानोंके पास इकट्ठा कर देना। जहाँ खेतीके मजदूर इधर-उधर बिखरे रहनेसे अपनी तकलीफ़ोंको चुपचाप सह लिया करते थे, वहाँ कारखानोंके मज़दूर संगठित हो आन्दोलन करनेकी ताक़त रखते थे। शुरूमें चाहे रोग और उसके निदानका ज्ञान उनको बहुत धुँधला-साही रहा हो; किन्तु उन्होंने उसी समयसे उससे बचनेके लिए अपने हाथ-पैर हिलाने शुरू कर दिये थे।

मनुष्य-जातिमें ऐसे लोग भी होते आये हैं, जो खुद आराममें रहनेपर

भी दूसरोंकी तकलीफोंपर सोचने और उसको दूर करनेके लिए अपना सब कुछ दे सकते हैं। जिस वक्त पूँजीवाद न था, और उसकी बुराइयोंको इतने भयंकर रूपमें देखना सम्भव न था, उस समय भी ऐसे विचारक पैदा हुए, जो आर्थिक समानताका प्रचार करते थे। गौतम बुद्धने ढाई हज़ार वर्ष पहले अपने भिक्षुओंमें ज़िन्दगीके कामकी चीज़ोंको ज़रूरत देख बराबर बाँटनेका नियम ही नहीं बनाया था बल्कि व्यक्तिगत सम्पत्तिकी सीमा अत्यन्त छोटी करके संघ या समुदायकी सम्पत्तिकी सीमाको बहुत बढ़ा दिया था। ईरानके मज़्दक् (पाँचवीं सदी)ने भी यही किया। नवीं सदीके मध्यमें तिब्बतके सम्राट् मुनि-चन-पोने भी तीन बार अपने राज्यमें धन-सम्पत्तिको बराबर-बराबर बँटवाया था। इस तरहके उदाहरण संसारके दूसरे हिस्सोंमें भी मिल सकते हैं। किन्तु जो साम्यवाद पूँजीवादकी असल दवा है, वह किसी व्यक्ति-विशेपकी उदाराशयताका परिणाम नहीं है। इस तरहके उदार-हृदय व्यक्ति तो ऐसा भी सोच सकते थे, और इस बीसवीं सदीमें भी सोच रहे हैं कि सभी खुराफातकी जड़ इन मशीनोंको ही क्यों न दुनियासे विदा कर दिया जाय! जो साम्य-वाद पूँजीवादके रोगकी परम औषधि माना जाता है, वह है साम्यवाद, अर्थात् साइंस विज्ञानोंके लाभोंको लेते हुए, उसकी तरक्कीके रास्तेको खुला रखते हुए, पूँजीवाद द्वारा खड़ी की गई विपत्तियोंको हटाना। जिस तरह बिजलीके लैम्पको ऊपरसे फूँककर बुझाया नहीं जा सकता, उसी तरह साइंस द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओंको अन्धी तपस्यासे हटाया नहीं जा सकता। वैज्ञानिक साम्यवादियोंने यह भलीभाँति समझ लिया है, कि विज्ञानके आविष्कार स्वयं बुरे नहीं हैं। जब इन आविष्कारोंका इस्तेमाल वैयक्तिक नफेके लिए करना शुरू किया गया, तभी बेकारीकी यह भारी समस्या पैदा हुई। इस लिए वैज्ञानिक साम्यवादी कहते हैं, कि विज्ञानके आविष्कारोंको कुछ आदमियोंके नफेके लिए इस्तेमाल न कर सारे समाजकी भलाईके लिए इस्तेमाल करना चाहिए। यदि विज्ञान छै आदमियोंके कामको एक आदमीके करने लायक कर देता है, तो पाँच

आदमियोंको कामसे छुड़ाकर उन्हें भूखा नहीं मारना चाहिए, बल्कि कामके घंटोंको उन छै आदमियोंमें बाँट देना चाहिए। छै आदमी जितने कपड़ेको बारह घंटेमें बना सकते थे, यदि मेशीन द्वारा एक आदमी ही उतने कपड़ोंको बारह घंटेमें बना सकता है, तो उस बारह घंटेके कामको हम छै आदमियोंमें दो-दो घंटा करके बाँट सकते हैं। बेकारीका यह बहुत ही अच्छा हल है, जो साम्यवाद पेश करता है। इस बातसे यह भी मालूम हो जाता है कि पूँजीवाद और साम्यवाद दोनोंके ध्येय एक दूसरे से बिलकुल उलटे हैं। दोनों ही विज्ञानके आविष्कारोंको काममें लानेके पक्षमें हैं, किन्तु जहाँ पूँजीवाद कुछ आदमियोंके नफेके लिए सारे मनुष्य-समाजके जीवनको नरक बनानेके लिए तैयार है, वहाँ साम्यवादका ध्येय है कुछ मनुष्योंके स्वार्थके लिए नहीं, बल्कि सारे मनुष्य-समाजके लिए सुख-सामग्रीकी वृद्धि करना। जब तक चीज़ोंको नफेके लिए तैयार किया जाता रहेगा, तब तक बेकारीके हटानेका नुस्खा—घंटोंको बाँटकर सभी लोगोंको काम देना—बरता नहीं जा सकता। वस्तुतः जैसे बाइसिकिल तभी तक खड़ी रह सकती है, जब तक कि वह चलती रहे; इसी तरह पूँजीवाद तभी तक चल सकता है, जब तक कि पूँजीपतिको वैयक्तिक नफा होता रहे। नफ़ा उसके लिए जीवन-मरणका प्रश्न है।

आजकल दुनियामें सब जगह लोग तकलीफ़ ही तकलीफ़में दीख पड़ते हैं। कारखानेवाले और व्यापारी ही बाज़ारकी मन्दीकी शिकायत नहीं करते, बल्कि गाँवोंके किसान और खेतोंमें काम करनेवाले मजदूर भी इसको अच्छी तरहसे अनुभव करते हैं। शहरोंके कारखानेवाले मज़दूरोंकी भयंकर अवस्थाके बारेमें तो कुछ कहना ही नहीं। यूरोप और अमेरिकाके अद्योगिक देशोंमें ऐसे बेकारोंकी संख्या करोड़ों तक पहुँच गई है, जिनके लिए जिन्दगीका बहुत ज़रूरी सामान मिलना भी मुश्किल हो रहा है। आये दिन वहाँ कितने ही स्त्री पुरुष जीवनसे तंग आकर आत्म-हत्या कर लिया करते हैं। आदमियोंकी इतनी भारी संख्याको

इतने कष्टमें रख, कुछ थोड़ेसे आदमियोंका सुखी रहना किसी भी दृष्टिसे अच्छा नहीं कहा जा सकता।

पूँजीवादका दुष्परिणाम बेकारी ही नहीं है। पूँजीवाद मनुष्य-जातिपर एक और भयङ्कर आपत्ति लानेका कारण हुआ है, और यह है महायुद्ध*—संसारकी शान्तिको भंग करना। हर एक पूँजीवादी देश यह चाहता है कि उसके कारखाने बराबर चलते रहें; लेकिन कारखाने तो तभी तक चलते रह सकते हैं, जब तक कि तैयार चीज़ें बिकती रहें। हम कह आये हैं कि उन्नीसवीं सदीके पहले पचास वर्षों तक दुनियामें बहुतसे नये बाज़ार अछूते पड़े हुए थे, लेकिन पिछली एक सदीमें बात बिलकुल ही बदल गई। अब तो चीज़ोंकी खपतके लिए कोई भी अज्ञात बाज़ार नहीं। वस्तुतः संसारके सभी व्यवसाय-रहित देशोंको पूँजीवादी देशोंने आपसमें बाँट लिया है। किसी समय इंग्लैण्ड दुनियाके अधिकांश बाज़ारोंका मालिक था। फिर जर्मनीने कारखानोंको बढ़ाकर अपने लिए भी बाज़ारोंको बढ़ाना चाहा। परिणाम हुआ पिछला भीषण यूरोपीय महायुद्ध। अभी यह युद्ध हो ही रहा था कि मैदान खाली पा अमेरिका और जापान भी बाज़ारोंको हथियाने लगे। उनके कारखाने बहुत अधिक संख्यामें चीज़ें तैयार करने लगे। लड़ाईके बन्द हो जानेके इतने दिनों बाद भी आज हालत क्या है? अगर अमेरिकाकी चीज़ोंको इंग्लैण्ड अपने साम्राज्यके भीतर नहीं आने देता—और आने देनेका मतलब है अपनी चीज़ोंकी खपतको कम करना—तो अमेरिका मौक़ा देखता रहता है कि कैसे हम इंग्लैण्डके प्रभुत्वको हटावें। यही बात जापानके बारेमें है, और और भी भयङ्करताके साथ। असलमें तो गिनी-चुनी दो रोटियाँ हैं, और उनको खानेके लिए तैयार हैं दर्जनों मुँह!

संसारके राष्ट्र इस अशान्तिको अच्छी तरह समझ रहे हैं, और यही कारण है, जो निरस्त्रीकरणकी इतनी चेष्टा हो रही है। तो भी जब

* देखिए "मानवसमाज" पृष्ठ २५१-६६

तक अपने मालकी खपतके लिए बाजारोंकी छीना-झपटी रहेगी, तब तक संसारके सिरपर लटकती हुई युद्धकी तलवार दूर नहीं हो सकती। बाज़ार और कच्चे मालके लिए नये देशोंपर अधिकार जमानेके लोभने २१ साल बाद फिर जर्मनीको भाग्य-परीक्षाके लिए मजबूर कर दिया। और उसने दूसरे महायुद्धको छेड़ दिया। उसने सोवियत संघपर आक्रमण कर कैसे युद्धके स्वरूपको बदल दिया जैसे हम अन्यत्र लिख चुके हैं।* अब तो पूँजीवाद ही दुनियाकी बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंका एकमात्र कारण हो रहा है। बाजारोंके कम होनेका एक और भी कारण उठ खड़ा हुआ है। पहले जो देश उद्योग-धन्धोंसे रहित थे, वह भी बड़ी तेज़ चालसे अपने कल-कारखानोंको बढ़ा रहे हैं। हिन्दुस्तानहीको ले लीजिए। जहाँ लड़ाईसे पहले वह अपनी जरूरतके कपड़ोंका पाँचवा हिस्सा भी मुश्किलसे बना सकता था, वहाँ अब वह प्रायः सभी कपड़ोंको अपने ही यहाँ तैयार कर लेता है। लालटेन, फ़ाउन्टेनपेन, पेंसिल, ब्रुश, ब्लेड, बैटरी जैसी सैकड़ों चीज़ें हैं, जो लड़ाईसे पहले हिन्दुस्तानमें तैयार नहीं होती थीं, किन्तु अब उनके कितने ही कारखाने खुल गये हैं। इतनी चीजोंके देशमें बननेका मतलब है, दूसरे देशोंसे उतने बाज़ारका छीन लेना। पहले ऐसे बहुतसे उद्योग-धन्धेरहित देश थे, जिनमें अब कारखाने बढ़ते जा रहे हैं। रूस, जो पहले बहुत कम चीजें तैयार करता था, अब दूसरा अमेरिका हो रहा है। चीन, तुर्की, ईरानकी बात छोड़ दीजिए, अब तो अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, जैसे देशोंमें भी कारखाने खुल रहे हैं।

बाजारोंकी छीना-झपटीसे संसारमें युद्धकी आशंकाकी बात हम कह चुके हैं। मेशीनोंके प्रयोगसे आदमियोंका बेकार होना और नये-नये आविष्कारसे बेकारीका और भी बढ़ना, फिर बाजारोंकी कमी रही-सही कमीको पूरा कर देती है। बेकारीकी समस्याको अधिक भयङ्कर रूप देनेके

---

* देखो "मानवसमाज" पृष्ठ ३०१-२, ४३९-४०

लिए यहो काफ़ी थे; लेकिन इसके ऊपर संसारमें हर दसवें सालकी जन-गणना देखनेसे मालूम हो रहा है कि जन-संख्या बढ़ती ही जा रही है। सिर्फ़ भारतमें ही सन् १६२१ से १६४१ तकके बीस वर्षोंमें छः करोड़से अधिक आदमी बढ़े हैं। पूँजीवाद कुछ लोगोंको धनी बनाकर उनके लिए सुख और विलासकी नई-नई सामग्री जुटा सकता है। अधिक मूल्यवान् मोटरों, जिनमें हाथ-पैर हिलाना न पड़े ऐसे महलों और उनके सजानेकी हजारों चीज़ों, पेरिससे नित नये निकलनेवाले फ़ैशनों और इसी तरहकी बहुतसी विलासिताकी वस्तुओंको वह जरूर हाज़िर कर सकता है; किन्तु युद्ध और सार्वजनिक बेकारीकी समस्याओंके हल होनेकी उससे आशा रखना दुराशामात्र है। यह समस्याएँ तो वस्तुतः अब मनुष्य-जातिके जीवन-मरणका सवाल बन गई हैं। युद्धकी आशंकाको ही ले लीजिए। विज्ञानने ऐसे-ऐसे हथियार, ऐसी-ऐसी विषैली गैसें, ऐसे भयंकर कीटाणु मनुष्यके हाथमें दे दिये हैं, कि उसने यदि शान्तिका रास्ता न निकाल पाया, तो मानव-समाजका सर्वनाश होकर ही रहेगा। ख्याल कीजिए, एक आदमीकी जेबमें स्याहीकी भरी फाउन्टेन पेनकी जगहपर एक वैसी ही शीशेकी नलीमें ऐसे भयंकर कीटाणु-समूह हैं, जिन्हें वह आदमी हवाई-जहाज़से उड़कर न्यूयार्क या लन्दन जैसे शहरमें छोड़ देता है, और कुछ ही घंटोंमें इतने बड़े शहर मुर्दोंके ढेर हो जाते हैं। यह काल्पनिक बातें नहीं हैं। युद्धसम्बन्धी वैज्ञानिक आविष्कार आजकल इसी तरहके हो रहे हैं।

पूँजीवादके कितने ही और भी दुष्परिणाम गिनाये जा सकते हैं। पूँजीवादका भयंकर परिणाम बहुतसे व्यक्तियोंको घोर दरिद्रतामें रखना भी है। हम ऐसे कितने ही लड़कोंको देखते हैं, जिनमें उत्तम प्रतिभा है। यदि उनको अवसर मिलता, तो ये अच्छे गणितज्ञ, वैज्ञानिक, कलाकर हो सकते मगर उनके माता-पिताके पास इतना धन नहीं कि वह अपने लड़केको उसकी रुचि और योग्यताके अनुसार आवश्यक शिक्षा दिला सकें। दूसरी ओर प्रतिभाहीन धनी सन्तानोंको पढ़ाने-लिखानेमें हजारों

लाखों रुपये बरबाद किये जाते हैं। पूँजीवादकी ही बदौलत वकालत जैसे व्यवसाय भी चल रहे हैं, जिनके न रहनेसे मनुष्य-समाजकी सुख-सामग्रीमें कुछ भी कमी नहीं हो सकती थी, और जो प्रतिभाको दफनानेमें कब्रिस्तानका काम देते हैं।

अनेक कारणोंमेंसे ये कुछ कारण हैं, जिन्होंने संसारमें साम्यवादको जन्म दिया है!

---

(३)

क्या पीछे लौटा जा सकता है ?

पहिले और दूसरे अध्यायोंमें हम पूँजीवाद और साम्यवादकी उत्पत्तिपर लिख चुके हैं। पूँजीवादसे उत्पन्न कठिनाइयोंका दिग्दर्शन कराते समय हमने लिखा था, कि उनकी दवा साम्यवाद है। हम यह भी लिख चुके हैं कि पूँजीपतियोंके वैयक्तिक नफेके लिए यन्त्रोंका अधिक प्रचार, उनके अधिक सुधार, तथा जन-वृद्धिने संसारमें भयंकर बेकारी पैदा की है। वस्तुतः जन-वृद्धि तो वह प्रश्न है, जो भारतमें पूँजीवादके प्रसार न होनेपर भी उपस्थित रहता। भारतकी असह्य दरिद्रता कैसे दूर की जाय, यह भी एक समस्या है, जिसपर हम अगले अध्यायमें लिखेंगे। इन समस्याओंका सामना हमारे देशमें दो प्रकारके आदमी करते हैं—एक तो वे जो धनकी बदौलत आरामकी ज़िन्दगी बसर करते हैं, और साम्यवादके हौवेने जिनकी अक्लको रात-दिन परेशान कर रखा है। यदि इस श्रेणीके लोगोंमें कुछ उदारमना हैं, और वह अपने पास-पड़ोसकी नंगी-ग़रीबीको थोड़ी देर ख्यालमें लानेके लिए मजबूर होते हैं; तो वह साम्यवादको असंभव और अवांछनीय कहकर टाल देते हैं। और जो "आप सुखी तो जग सुखी"के मनानेवाले हैं, उनसे तो अकल रखते भी इन बातोंपर विचार करनेकी आशा ही नहीं रखनी चाहिए। हाँ एक दूसरी श्रेणीके लोग हैं, जो परिस्थितिकी भीषणताको समझते हैं, और चाहते हैं कि इसके लिए कुछ किया जाये। इनमें भी दो प्रकारके लोग हैं, एक तो यही साम्यवादी, जिनके दृष्टिकोणसे यह पुस्तक लिखी गई है, और दूसरे वह जो कहते हैं—"क्यों न हम इस शैतानी ख़ुराफ़ात यंत्रवादको ही छोड़ उस पुराने युगमें चले चलें, जहाँ इन यंत्रोंका नाम न था; जिस वक्त हर एक गाँव एक पूरा संसार था, जहाँ

बढ़ई, लोहार, जुलाहा, किसान सब स्वतन्त्रतापूर्वक हरे-हरे खेतों और शीतल उद्यानोंसे घिरे, प्रकृतिकी गोदमें क्रीड़ा करते शान्ति और सन्तोषका जीवन बिताते थे, जबकि उनके पड़ोसके तपोवनोंमें ऋषियों और महात्माओंके प्रशान्त आश्रम अपने आध्यात्मिक आनन्द और प्रेमसे मनुष्य तथा पशुपक्षियों तकको आप्लावित करते थे। जिन यन्त्रोंके कारण हमारी वह सोनेकी दुनिया—वह सतयुग—छिन गया, चलो हम फिर वहीं चले चलें।"

यद्यपि उस "स्वर्णयुग"की कृतियों—पिरामिड, चीनी-दीवार आदिके इतिहासोंको पढ़नेवाले जरूर कहेंगे, कि ऊपरके भावुकतापूर्ण मनोहर चित्रमें तीन चौथाई झूठका रंग है, और दासताके उस प्रबल युगमें मनुष्यका मूल्य उतना भी न था, जितना कि आज-कल इस घोर "कलियुग"में। तो भी थोड़ी देरकेलिए हम इस चित्रको सच्चा ही मान लेते हैं। इसमें शक नहीं कि यदि हम दो-तीन हजार वर्ष पहिले वाले जमानेमें लौट जा सकें, तो पहिली दो समस्याएँ—यंत्रोंका प्रचार और सुधार—से उत्पन्न कठिनाई हल हो सकती है। लेकिन सवाल तो है, क्या हम पीछे लौटनेके लिए स्वतंत्र हैं? यंत्रका आविष्कार एक मनुष्यके एक घंटे दिमाग लड़ानेका फल नहीं है। इसका आरम्भ बहुत पहिलेसे है; तभीसे जबकि चतुष्पाद प्राणी चारों पैरोंका काम पिछले दो पैरोंके सुपुर्दकर अगले पैरोंको पृथिवीसे स्वतंत्रकर द्विपाद बन गया। अगले पैरोंसे डण्डे और पत्थरका फेंकना तो विकासकी आगेकी सीढ़ियोंमेंसे है। हम उन बातोंको यहाँ दुहराना नहीं चाहते, जिन्हें हम अन्यत्र* कह आये हैं। सारांश यह, कि मनुष्यमें मनुष्यता जबसे आई तभीसे वह यांत्रिक प्राणी है, भेद तो सिर्फ परिमाणका है। हमारे मित्र यंत्रोंकी विकासधाराके पहिले भागको नहीं ख्यालमें लाना चाहते। वे समझते हैं, हाथसे परिचालित कुम्हारका चक्का, चर्खा, रहट और रथ यंत्र नहीं हैं; यंत्र तो भाप, तेल या बिजलीसे चलनेवाली कलें ही हैं।

* देखो इस पुस्तक की भूमिका तथा "मानव-समाज" पृष्ठ ४,५,१८-२

अच्छा तो आप भाप, तेल या बिजलीसे चलनेवाले यंत्रोंको—जो ही वस्तुतः हमारी वर्तमान विकट परिस्थितिके उत्पन्न करनेमें मुख्य कारण हैं—संसारसे उठा देना चाहते हैं ? किन्तु जानते हैं, यह यंत्र और उनके मूल सिद्धान्त विद्वानोंके दिमागसे निकले हैं। कैसे विद्वानोंके दिमागसे ?—जिन्हें जीवन भरके अनथक परिश्रमसे यदि प्रकृतिका एक भी अज्ञात नियम मिल जाता है, तो उनके लिए संसारमें उससे बढ़कर आनन्दकी कोई वस्तु नहीं। यही नहीं, बल्कि यदि इस खोजको अनुचित समझा जाय, तो आपके हुक्मसे आगकी भयंकर लपटोंमें जलने तथा चरखीके पेंचमें पिसनेके लिए दो सौ वर्ष पहिलेकी भाँति आज भी वह सहर्ष तैयार हैं। और जब तक यह खुराफ़ाती दिमाग़—जो ही वस्तुतः शैतानका लोहारखाना है—मौजूद रहेगा, तब तक आप यंत्रोंके अस्तित्व-को कैसे मिटा सकते हैं ? अब मालूम हुआ, पीछे लौटना उतना आसान और शान्तिमय नहीं है, जितना कि आप उसे समझ रहे थे। इसके लिए मनुष्यके सबसे ऊँचे दिमागोंका कत्ल-आम करना होगा, और इसे हमारे शान्ति-भक्त, सतयुग-यात्री कभी पसंद न करेंगे।

हाँ, लेकिन वह कह सकते हैं—वैज्ञानिकों और विचारकोंके वध करनेकी आवश्यकता नहीं, हम उन्हें जीने देंगे; लेकिन उनके आविष्कारों-का जिसमें लोग व्यवहार न करें, वैसा प्रबन्ध कर देंगे। फिर अपने आविष्कारोंको निष्प्रयोजन होते देख वह स्वयं उधर सोचना छोड़ देंगे, और इस प्रकार थोड़े ही समय बाद दुनिया अपने इन भयंकर शत्रुओंसे मुक्त हो जायेगी। या यदि ऐसे कुछ पागल सोचनेसे बाज नहीं आयेंगे, तो एक तो रसायनशाला आदिकी सुविधा न रहनेसे उनका काम असंभव नहीं तो कठिन ज़रूर हो जायेगा, और पूरा होनेपर भी मदारीके खेलकी भाँति वह एक मनोरंजनकी सामग्री मात्र रह जायेगा।

इन जैसे विचारवालोंको पहिले यह सोचना चाहिए, कि वैज्ञानिक खोजोंको व्यवहारमें लानेवाले कौन हैं ? और क्या उनमें ऐसी शक्ति है, जिससे कि उन लोगोंको उनकी उस नाजायज़ हर्कतसे बाज़ रक्खा जा

सके। इन खोजोंका इस्तेमाल करनेवाले , दुनियाके करोड़पति, अरबपति व्यवसायी व्यापारी जिनके विमान आसमानमें वायुगतिसे दौड़ते हुए देशोंके अन्तर और विस्तारको शून्यसा बना रहे हैं; जिनके तीस-तीस चालीस-चालीस हज़ार टनके जहाज़ समुद्रके कलेजेको चीरते चीज़ोंको मिट्टीके मोलपर एक देशसे दूसरे देश पहुँचा रहे हैं; जिनकी रेलें, मोटरें और हज़ार तरहकी दूसरी चीजें जीवनकी अत्यन्त आवश्यक सामग्री बन गई हैं। इन सबके साथ सबसे बड़ी बात यह है, कि दुनियाका शासन आजकल उनके ही हाथमें है, इसीलिए आप शक्तिसे उनपर काबू नहीं पा सकते। आपका तर्क थोड़ी देरके लिए उनके मनोरंजनकी सामग्री हो सकता है, यदि आप उसे रसकिन या गांधीके मोहक शब्दों और शब्लोंके साथ पेश कर सकें। और हो सकता है, कोई-कोई खाली वक्तमें आपके इस सर्मनको सुननेके लिए तैयार भी हो जायं। इङ्गलैण्ड अमेरिकाके गोला बारूदके तैयार करनेवाले कारखाने---जिनमें निरस्त्री-करण सभाओंमें गला फाड़-फाड़कर लेक्चर देनेवाले राजनीतिज्ञों और उनके सम्बन्धियोंकी बहुत-सी पूँजी लगी हुई है—जब मनुष्य-संहारक अस्त्रोंको, अपने देशकी रक्षाके लिए नहीं, जापान और चीनकी युद्धाग्निमें आहुति देनेके लिए, राष्ट्र-सभाके मना करनेपर भी बेचनेसे बाज नहीं आ सकते, तो क्या आशा रखते हैं कि आपके सूखे सर्मनसे वह सुईसे लेकर जहाज तक तैयार करनेवाले अपने कारखानोंको बन्द कर देंगे ? और उनके धनसे पोषित दास-पुरोहित वर्ग आपको चुपचाप निकल जाने देगा ?

यन्त्रोंका बहुत भारी इस्तेमाल तो सभी देशोंकी सरकारें करती हैं। रेल, विमान, जहाज, तोप, तारपीडो, बेतार, उनके लिए जीवन-मरणका प्रश्न है। जब तक पड़ोसीके पास यह चीजें रहेंगी, तब तक कोई सरकार उन्हें छोड़ कैसे सकती है ? चंगेज़खाँकी सेना प्रशांत महासागरसे डेन्युब तट तक क्यों विजयी हुई ?—क्योंकि उसके पास हथियारोंमें बारूद शामिल हो गई थी। भारतमें बाबरकी विजयमें भी एक प्रधान कारण

वह बारूदकी तोपें थीं, जो उस समय पहिले-पहल भारतमें इस्तेमाल की गई। यूरोपवालोंके एशियामें विजयका कारण उनके लोहेका कड़ा होना—अर्थात् उनके पास अधिक शक्तिशाली सुधरे आग्नेय-अस्त्रोंका होना—भी है। ढाई हज़ार वर्ष पूर्व भारतमें लकड़ीकी दीवारोंके किले रक्षाके लिए पर्याप्त थे, जैसे तीरोंके प्रहारके लिए वह उसी प्रकार पर्याप्त थे, जैसे कि आग्नेय अस्त्रोंके ज़मानेसे पूर्व ज़िरह-बखतर। फिर जैसे-जैसे हथियारोंकी शक्ति बढ़ती गई, वैसे ही वैसे ईंट, पत्थर आदिकी अत्यन्त मोटी दीवारोंवाले किले बनने लगे। तोपोंके अत्यन्त शक्तिशाली होनेपर तो फौलादी किलोंकी ज़रूरत पड़ी किन्तु ऐण्टवर्प जैसे अभेद्य सुदृढ़ फ़ौलादी क़िलेको जर्मन तोपोंने २४ घन्टेमें उड़ा फेंका। आजकल विमानोंके युगमें तो वह क़िले भी बकार से हो गये हैं। इस वक्त जबकि हर गवर्नमेंट सद्यःआविष्कृत हथियारोंसे अपनेको सुसज्जित करना चाहती है, आपकी बात कौन सुननेके लिए तैयार होगा ?

मान लीजिए किसी देशकी अकलका दीवाला निकल गया, और वह तैयार हो जावे सारे यन्त्रोंके बायकाट करनेको; तो उसकी गति क्या होगी ? वही जो कोङ्गोंके हब्शियोंकी है। वह किसी बलशाली शक्तिका हमेशाके लिए गुलाम बन जावेगा। सम्भव है वह शक्ति आप जैसे सौ-पचास आदर्शवादियोंको आत्म-शुद्धिके लिए बनमें तप और उपवास करने की सुविधा दे दे, किन्तु देशके लोगोंको तो सुख और आशाके जीवनको सदाके लिए भुला ही देना होगा; क्योंकि मुक्ति यदि कभी हो सकती, तो वह विज्ञानहीकी सहायतासे, किन्तु आपने उन्हें उससे वञ्चित कर दिया।

इस प्रकार कोई ईमानदार सरकार भी आत्म रक्षाके लिए अत्यन्त आवश्यक साधनों, सामरिक महत्त्वके यन्त्रोंको छोड़नेके लिए तैयार नहीं हो सकती। फिर कौन यंत्र सामरिक महत्त्वका नहीं है, इसे कोई नहीं कहता। वस्तुतः यदि किसी देशकी पार्लियामेण्टमें कोई सतयुगवादी इस तरहका क़ानून पेश करे, कि सामरिक महत्त्व न रखनेवाले सभी यंत्र

देशमें वर्जित ठहरा दिये जायें; तो वह सरकारकी ओरसे शायद बिना विरोधके पास हो जावेगा; क्योंकि सरकार आसानीसे बतला सकेगी कि कोई भी यंत्र सामरिक महत्त्वसे खाली नहीं है। हाँ, यदि क़ानून छापनेके काग़ज़-स्याहीकी फजूलखर्चीका ख्याल आ जाये—और राष्ट्रीय मितव्ययिताके विज्ञापनके साथ एक ही लिफाफा अनेक बार इस्तेमाल करनेवाली सरकारोंके युगमें ऐसा हो सकता है—तो वह रुकावट भी डाल सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि आपके सतयुगकी ओर लौटनेके लिए न व्यवसायी तैयार हो सकते हैं, न उनकी सरकारें। हां हम मानेंगे, जब नकटे पंथके लिए भी अनुयायी मिल सकते हैं, तो आपके निःस्वार्थ शुद्धभावसे निकले विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेवाले कुछ आदमी क्यों न मिल जायेंगे। और यदि उनके पास रुपया होगा, तो नंगा-पंथियों-की भाँति शहरके बाहर वे भी अपना उद्यान, आश्रम या बस्ती बसा सकते हैं।

पीछे लौटनेमें दो सबसे बड़ी और हटानेमें असम्भव सी कठिनाइयों को हम कह चुके। इनके अतिरिक्त और भी कितनी ही बातें बतलाई जा सकती हैं। वैसा करनेके लिए ज्ञानके प्रसारमें आजकल अत्यन्त सहायक प्रेस, अखबार तथा दूसरे यन्त्रोंसे जितनी मदद मिलती है, उसे भी छोड़ना होगा। और फिर तालके पत्रों, लकड़ीके तख्तों और चमड़ों पर लिखाई-पढ़ाई शुरू करनी होगी। पुस्तकोंके अभावमें फिर पहिलेकी तरह विद्याको बहुत कुछ कंठस्थ ही करके रखना होगा। पहिले तो लाचार हो वैसा करना पड़ता था, और अब सुगम साधनोंको अपनी आँखोंके सामने देखकर वैसा करना उतना आसान नहीं है जैसा कि जीभसे कहनेमें मालूम होता है।

यन्त्रों द्वारा उत्पन्न बेकारीकी समस्याको आपका सतयुगकी ओर लौटना कुछ हदतक हल कर सकता है, यदि आप वैसा करनेमें सफल हों। लेकिन बेकारीका एक और भी कारण है—वह है जनवृद्धि।

संसारमें कुछ थोड़ेसे उद्योगप्रधान देशोंको छोड़, सभी जगह मनुष्य-संख्या बढ़ रही है; और बड़ी भयंकर गति से। १९४१ ई०की जन-गणनासे मालूम होता है, कि गत २० वर्षोंमें भारतकी जनसंख्यामें ६ करोड़से अधिक की वृद्धि हुई है। युक्त-प्रान्त और बिहारके अधिकांश जिलोंमें यह हालत है, कि आदमी पीछे चौथाई एकड़ खेती लायक भूमि मुश्किलसे मिलेगी; और वहाँपर जंगल या पर्ती जमीन भी इतनी नहीं, कि नये खेत बनाये जा सकें। आप बिहारके सारन और युक्तप्रान्तके गोरखपुर जिलोंको ले लीजिए, जहाँ खेती लायक $\frac{1}{4}$ एकड़ भूमि भी आदमी पीछे नहीं पड़ती। वहाँके लाखों आदमी कलकत्ता और दूसरे शहरोंके कारखानोंमें काम करते हैं; तब भी वहाँकी गरीबी बयान नहीं की जा सकती। आपके सतयुगमें भी खाने-कपड़ेसे बेफ़िक्र होनेके लिए आदमी पीछे दो एकड़ खेत तो जरूर चाहिए, और गोचरभूमि तथा ऋषियोंके आश्रमका यदि इंतज़ाम किया गया, तब तो उसे और बढ़ाना होगा। फिर यह ज़मीन कहाँसे आयेगी ? ज़मीनको बढ़ाना संभव नहीं तो खानेवालोंकी संख्याको कम कर देना होगा। क्या आप सारन जिलेकी चौबीस लाखकी आबादीको पाँच लाख करनेका नुसखा बतला सकते हैं ? शायद आप सन्तति-निरोधके भी पक्षपाती न होंगे, और हिंसाके रास्तेको तो कभी भी स्वीकार न करेंगे। यदि आपने एक बार दिलपर पत्थर रख किसी तरह घटाकर संख्या पाँच लाख कर भी दी, तो भी क्या ठीक है, कि पाँचवीं पीढ़ी तक बढ़कर वह फिर उतनी ही नहीं हो जायेगी ?

जन-वृद्धि रोकनेमें कल कारखानोंका प्रचार सहायक हुआ है। इग्लैण्ड, फ्रांस आदि यंत्रप्रधान देशोंमें जन-वृद्धि रुक सी गई है। सन्तति-निरोध और यंत्रवादको माननेवाले साम्यवादी इसकी ओरसे चिंतित नहीं हो सकते, किन्तु पीछे लौटनेवाले सतयुगवादी इसे हल नहीं कर सकते। उनके संयम और ब्रह्मचर्यके नुसखे शायद एकाधके लिए लाभदायक हों; अलबत्ता वह समाजमें पाखंड तथा कितने गुप्त अपराधोंकी सृष्टि जरूर कर सकते हैं।

हाँ आप कह सकते हैं—कुछ हम करेंगे, और कुछ भगवान् भी तो हमें सहायता देंगे ? नहीं जनाब ! आप स्वय कुछ मत करें भगवान् पर ही सबको छोड़ दें। ऐसा ही क्यों नहीं मनको समझा लेते, कि साम्यवादी जो कुछ कर रहे हैं—वह भगवान् ही कर रहे हैं। ईश्वरके बारेमें हम आगे कहेंगे, इसलिए यहाँपर इतना ही बस है।

इतना लिखनेसे यह मालूम हो गया कि पीछेकी ओर भागना हमारे लिए असंभव है, हमें समस्याओंका सामना आगे बढ़कर करना होगा।

---

(४)

हमारी भयंकर दरिद्रताकी दवा साम्यवाद

तीसरे अध्यायमें हम कह चुके, कि क्यों हमारे लिए अब पीछे लौटना असंभव है। पेट भरे फुर्सतवाले लोगोंके हाथमें जब कलम होती है, तो वह भारतको भूस्वर्ग चित्रित करना चाहते हैं। यदि भारतसे मतलब कुछ सौ राजा-महाराजाओं तथा धनियों और ज़मींदारोंसे है, तब तो यह बात कुछ हद तक ठीक हो सकती है। भारतको अपनी आँखोंसे न देखे बहुतसे युरोपके नरनारी भी हमारे देशके राजाओंको देख, वैसा ही समझनेकी गलती करते हैं। किन्तु, क्या वास्तविक अवस्था ऐसी है? भूस्वर्ग तो दूर, भारतके बहुसंख्यक आदमी जैसी दरिद्रतामें हैं, उसका बाहरवालोंको अनुमान भी नहीं हो सकता। युरोपके लोग ज़िन्दगीको किसी तरह काट लेने अथवा भूखे मरनेसे अपनेको बचा रखनेको "रोटी मक्खनपर दिन काटना" के नामसे कहते हैं। हमारे यहाँके गरीबोंके लिए तो वह सपनेकी बात है। यहाँ तो वे फसल काटनेके समय ही पेट भर रूखा-सूखा खा सकते हैं। बाक़ी समयमें कैसे गुज़ारा करते हैं, इसका समझना मुश्किल है। बिहार और युक्त-प्रान्तके दीहात गरीबोंको देखिए। चैतमें फसल काटते वक्त मज़दूरी भिखमङ्गी, या खेतमें छुटी बालोंके चुननेसे उनका पेट ज़रूर भर जाता है, किन्तु आधे बैशाखसे ही अवस्था बिगड़ने लगती है। आषाढ़ पहुँचते-पहुँचते तो उनका चैतका हरा शरीर सूख जाता है। और फिर बरसातके आरम्भके साथ चकवँड़, करमी आदिके उबले साग उनके जीवन-यापनके प्रधान आश्रय बन जाते हैं। हाँ, यदि उस साल आमोंकी फसल हुई, तो उनकी गुठलियोंकी रोटी भी उन्हें मिल जाती है। उनकी गरीबीका "बारहमासा" यदि बनाया जाये, तो सालके दो-तीन मासोंको छोड़ यही करुण-कहानी

वर्षभर चलेगी। ऐसे आदमी शहरों और स्टेशनोंपर आसानीसे मिल जावेंगे, जो आपके फेंके जूठे टुकड़ोंको कुत्तेके मुँहसे छीनकर खा डालते हैं। आप उनको तब तक काम न करनेका ताना नहीं मार सकते जब तक देशके करोड़ों बेकारोंको काम दिलानेका प्रबन्ध नहीं कर देते। हमारा देश सौभाग्यवान् है, जो इतना सर्द नहीं; अन्यथा लोग कपड़ा खरीदनेमें जिस तरह असमर्थ हैं, उससे तो हर साल लाखों आदमियों-को जाड़ा ही उठा ले जाता। लाखों आदमी कोपीन, एक फटी धोती, या बहुत हुआ तो धोती-अंगोछीके साथ, क्या खुशीसे रहते हैं? यदि उन्हें शरीर ढाँकनेके लिए पूरे कपड़े मिलें, तो क्या वह उसे फेंक देंगे? कितने ही हमारे शिक्षित भाई उनके मैले कपड़ोंपर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। जिसने मुश्किलसे पेट-काट दस आने पैसे जमाकर धोती खरीदी, भला वह हर आठवें रोज एक पैसा साबुनके लिए कहाँसे लायेगा? यदि कोई थोड़ी कंजूमीसे काम लेता है, तो वह भी तो भविष्यके अंधकारमय होनेके कारण।

और बीमारी?—वह तो इन लोगोंके लिए मौतका पर्वाना लेकर आती है। मुझे गाँवके एक गरीब घरका अपना अनुभव है, जोकि कुछ पुड़िया कुनैन और दो-तीन सप्ताहके मामूली पथ्य भोजनके अभावमें तीन-चार वर्षोंके भीतर खतम हो गया। भारतके कोने-कोनेमें ऐसे लाखों उदाहरण मिल सकते हैं।

यह तो हुआ जीवनकी अनिवार्य तथा आवश्यक चीजोंके बारेमें। मनुष्य बननेके लिए शिक्षाकी भी आवश्यकता होती है। सरकार गाँव-गाँवमें स्कूल नहीं खोल सकती; कहती है—खजानेमें रुपया नहीं। क्या उसका भी कारण लोगोंकी गरीबी नहीं है? यदि सब जगह स्कूल खोल भी दिये जायें, तो क्या सब लोग अपने लड़कोंको पढ़नेके लिए भेज सकते हैं? छः-छः सात-सात वर्षके लड़कोंको भी तो गाय बैल चराकर या बच्चा खेलाकर अपना पेट भरना पड़ता है, फिर स्कूलमें जानेपर उन्हें खाना-कपड़ा कहाँसे मिलेगा?

संक्षेपमें हमारे यहाँकी गरीबी दुनियामें मिसाल नहीं रखती। हमारे लोगोंने चूँकि दुनियाके और देशोंको देखा नहीं, इसलिए वे अपने ही भीतर गरीबीका तारतम्य देख और तकदीर समझ उसे सह लेते हैं।

इस गरीबीके कारणोंमेंसे कुछ तो ऐसे हैं, जिनके बारेमें पाठकोंने बहुत पढ़ा-सुना होगा। लोग सारी बातोंका दोष विदेशी शासन-के मत्थे मढ़ छुट्टी ले लेना चाहते हैं। वह समझते हैं, स्वराज्य होते ही हमारे सब संकट दूर हो जायेंगे। क्या स्वराज्य-प्राप्त देशोंमें गरीबीसे तंग आकर हर साल हजारों आदमी आत्म-हत्या नहीं करते? यदि वह विदेशी शासन और विदेशी व्यापारके लिए देशसे बाहर जानेवाले धनको भारतके पैंतीस करोड़ आदमियोंमें बाँटकर देखें, तो उन्हें मालूम होगा, कि वैसा करनेसे भी लोगोंकी आमदनीमें उतनी वृद्धि न होगी, जिससे वह साधारण मनुष्य-जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि स्वराजी सरकारने उद्योग धन्धोंकी मदद की तो इसमें शक नहीं, हालत कुछ सुधरेगी; फिर भी हमारे अधिकांश देशवासी यूरोपके गरीबोंसे भी निकृष्ट अवस्थाहीमें रहेंगे।

हमारे देशकी गरीबी ऐसी नहीं है, जिसका इलाज न हो। सभी साधन रहते भी हम बेबस हैं, क्योंकि हम उन साधनोंका इस्तेमाल कर नहीं सकते। मनुष्यका श्रम ही तो धन है। भारतके पैंतीस करोड़ आदमियोंमें अठारह करोड़ आदमी तो अवश्य काम कर सकते हैं। आजकल उनमेंसे थोड़े तो धनी होनेके कारण काम करनेमें अपनी हतक समझते हैं। यही नहीं, उनको अपने शरीरकी देखभाल सेवा-टहलके लिए भी दर्जनों आदमी चाहिए। वह स्वयं भी काहिल हैं, और दूसरेके कामके भी चोर। लेकिन जो लोग काम कर सकते हैं, क्या उन सबको काम मिलता है? किसी पूँजीवादी देशमें सबको काम मिल ही नहीं सकता। मिल-मालिकों और जमींदारोंको एक परिमित संख्यामें ही मजदूर चाहिए। राजा-महाराजों सेठ-साहूकारोंके खिदमतगारोंका काम उत्पादक श्रम नहीं है, क्योंकि उनके कामसे

मनुष्य-जीवनके लिए आवश्यक कोई चीज़ उत्पन्न नहीं की जा सकती। आखिर श्रम और वेतन एक दूसरेपर आश्रित चीजें हैं। जब श्रम खाने-पहिनने, रहनेकी चीजोंको पैदा करता है, तो श्रमिकको यही चीजें रुपये पैसेके संकेतसे वेतनके रूपमें मिलती हैं। जितनी ही जीवनकी उपयोगी चीज़ें अधिक परिमाणमें पैदा होंगी, उतनी ही वेतनमें फराखदिली होगी, लेकिन पूँजीवाद तो सभी कामोंको करता है नफेकी दृष्टिसे। नफेके रास्तेकी कितनी ही रुकावटोंको हम पहले कह आये हैं, जिसके कारण पूँजीवाद राष्ट्रके सभीको श्रमको इस्तेमाल नहीं कर सकता। यही वजह है, जो पूँजीवादमें श्रमका अपव्यय और नाश बहुत भारी परिमाणमें होता है। हम यहाँ एक उदाहरण देते हैं। जनवरी १६३४में बिहारमें भीषण भूकंप आया। शहर और देहातके लाखों घर, आने-जानेकी सड़कें और पुल नष्ट हो गये। उनका फिरसे बनना अब एक पीढ़ीका काम समझा जा रहा है। यह क्यों? क्या बिहारमें पत्थर, ईंट, कंकड़, लकड़ी और लोहेका अभाव है? क्या काम करनेवालोंकी कमी है? नहीं, अकेले उस पीड़ित इलाकेमें दो एक करोड़ आदमी बसते हैं, जिनमेंसे आधे कोई न कोई काम जरूर कर सकते हैं। मुँगेरके आस-पास पत्थरोंके पहाड़ हैं। तराईका साखुओंका जङ्गल भी बहुत दूर नहीं है। इसी प्रकार झरियाकी खानें—जिनका बहुतसा निकाला हुआ कोयला बेकार पड़ा रहता है, और ताताका लोहेका कारखाना भी बहुत दूर नहीं है। तब क्या बात है, जो उजड़े बिहारको बसनेके लिए एक पीढ़ी तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? क्योंकि उक्त सभी चीजें राष्ट्रकी न समझी जाकर कुछ व्यक्तियोंकी समझी जाती हैं। और वह व्यक्ति या पूँजीपति नफेके बिना उन चीज़ोंके इस्तेमाल करनेकी आज्ञा नहीं दे सकते। श्रमका मूल्य तो वह नफ़ा देखकर लगाते हैं। यदि पूँजीपतियोंको उससे कुछ अधिक नफ़ा हो जितना कि पचास लाख आदमियोंकी मज़दूरीमें देना पड़ेगा, तो प्राप्य होनेपर काममें लगानेके लिए पूँजी दी जा सकती है। किन्तु इसकी वहाँ सम्भावना है

नहीं है। बनी चीजें राष्ट्रीय धनमें वृद्धि करेंगी, यह तो उन्हें ख्याल ही नहीं हो सकता। फलतः इस व्यक्तिगत सम्पत्ति, इस पूँजीवाद और उसके नफेके सौदेके कारण बिहारको बसनेके लिए अभी वर्षों तक प्रतीक्षा करना होगा।

यदि आज बिहारमें साम्यवादी शासन होता तो क्या होता? वह भूकम्पके दूसरे ही हफ़्ते काम करने लायक पचास लाख आदमियोंको पुनर्निर्माणके काममें लगा देता। यदि एक-एक आदमी पचास-पचास टोकरी मिट्टी भी उठाता तो एक दिनमें पचीस करोड़ टोकरी मिट्टी सड़कोंपर रखी, या खेतोंसे हटाई जा सकती थी। फिर जो पानीके रास्ते बालूसे भर गये थे, उन्हें साफ करते कितना समय लगता? बरसात खतम होते ही यदि यह पचास लाख आदमी मकानों और उनके लिए उपयोगी सामानके बनानेमें लग जाते तो उजड़े बिहारको पहिलेसे भी सुन्दर स्वास्थ्यप्रद घरों, सड़कों और पुलोंसे सुसज्जित करनेमें क्या एक डेढ़ वर्षसे ज्यादा लगता? वेतनका सवाल? सभी जीवनकी आवश्यक चीजें तो बिहारहीमें तैयार होतीं, फिर उनका विनिमय कोई मुश्किल न था। साम्यवादी सरकार हर एक आदमीको एक रुपयेका नोट प्रतिदिन देती जो उसके कामका प्रमाण भी होता और साथ ही साथ उससे वह आवश्यक चीजें खरीद सकता। ज्यादासे ज्यादा यही होता कि एक वर्षके लिए खाने-पहिननेकी चीजें बाहरके प्रान्तोंसे मँगानी पड़तीं। यदि पड़ोसी प्रान्त साम्यवादी न होते तो इससे उनके बाजारकी मन्दी ही कुछ कम होती। बादमें तो बिहार खुद स्वावलम्बी हो जाता और अपने सहायकोंकी जरूरत पड़नेपर उसी प्रकार सहायता करता।

साम्यवादका ध्येय है, सारे देश या विश्वको एक सम्मिलित परिवार बना देना,, और देशकी सारी सम्पत्तिको उस परिवारकी सम्पत्ति करार देना। भारत जैसे देशमें जहाँ कि जीवनकी सभी आवश्यक चीजें उत्पन्न की जा सकती हैं—काम है; वार्षिक आवश्यकताका अन्दाजा

लगाकर उसके उत्पादनके लिए सारे परिवारके आदमियोंमें काम बाँट देना है। और फिर उत्पन्न चीजोंको भी आवश्यकतानुसार दे देना है। स्वस्थ आदमीको खाना-कपड़ा, स्वच्छ मकान, बीमारके लिए दवा और पथ्य और लड़कोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध हो गया बस काम खतम। नफ़ा तो दूसरेकी मेहनतकी चोरीका प्रतिष्ठित नाम है। उसके लिए साम्यवादमें स्थान नहीं है।

इस तरह मालूम हुआ हमारी भयंकर दरिद्रताका अन्त साम्यवाद ही कर सकता है, क्योंकि वही सदुपयोगके साथ सभी लोगोंको काम दे सकता है।

---

(५)

हमारे सामाजिक रोग और साम्यवाद

पुस्तककी भूमिकामें हम संक्षेपसे कह चुके हैं, कैसे भारतमें प्राग्द्राविड़ीय, हब्शी द्रविड़ आर्य—इन चार जातियोंका सम्मिश्रण हुआ। कैसे आर्योंके आनेपर आजसे साढ़े तीन हज़ार वर्ष पूर्व काले-गोरे या शूद्र-आर्यका प्रश्न उठा। आर्य विजेता थे वह अपनी सब बातोंपर अभिमान करते थे। वह साम्यवादी तो थे नहीं, कि विजेता और विजितके भेदको भुला देते। उनके शरीरका रंग-रूप भी विजितोंसे भिन्न था। वह नहीं चाहते थे, कि काले, नाटे, चिपटी नाक वाले अनार्योंके संसर्गसे उनका गोरा रंग, लम्बी नाक और ऊँचा क़द बिगड़ जाये। इन भावोंने समय-समयपर उग्र रूप भी धारण किया होगा, और इसके कारण उस अन्धकारपूर्ण अतीतमें अमेरिकाकी भाँति कई बार इस भूमिपर भी लेंचिङ्की होली ज़रूर खेली गई होगी। अपमान और भेद-भाव भरे बर्तावोंको हटानेके लिए यदि इस बीसवीं सदीके मध्यमें भी जब इतने आन्दोलनकी आवश्यकता है, और वह भी घोर विरोध और कटुतासे खाली नहीं है, तो उस समय अवस्था कैसी भयंकर रही होगी इसका अनुमान सहज ही हो सकता है। और उसकी कुछ सूचना तो आर्योंके अपने पुराने ग्रन्थ भी दे सकते हैं।

हाँ, तो आर्योंके इस सारे अभिमानका कारण उनका गोरा रंग, और विजेता होना था। भारतमें यह रंग या वर्णका प्रश्न साढ़े तीन हज़ार वर्ष पुराना है। सामाजिक बहिष्कारके कड़े होनेपर भी नित्यके सहवाससे आखिर रक्त-सम्मिश्रण हुआ ही। वर्णाश्रम धर्मके कट्टर पक्षपाती आजकलके मद्रासी ब्राह्मणोंमें अधिकांशका रंग ऐसा है, कि उन्हें देखते ही सप्तसिन्धुके आर्य कवषऐलूषकी भाँति शूद्र कहकर निकाल

देते। आज तो आर्योंकी किसी भी उपजातिको ले लीजिए, उनके बहुतसे आदमियोंमें अनार्योंका रंगरूप ज़रूर मिलेगा। साथ ही अनार्य जातियोंमें भी बहुसंख्यक स्त्री-पुरुष ऐसे मिलेंगे, जो रंग-रूपमें आजकलके अच्छे रंग रूपवाले आर्य-सन्तानोंके समान हैं। इस प्रकार आजकल वर्णों (=रंगों) की संकरता (सम्मिश्रण) इतनी हो गई है, कि वर्ण-भेदका पुराना कारण अब है ही नहीं। आज पराजित होनेपर पुराना विजेता होनेका अभिमान भी हास्यास्पद है। इतना होनेपर भी वह भाव अभी तक वैसे ही हैं।

आर्य-अनार्यका भेद चला ही आता था, पीछे और हज़ारों जातियोंके स्थापित होनेपर तो अवस्था और बुरी हो गई। किसी समय यह अलग अलग जातियाँ कम-बेशी आर्य रुधिर और व्यवसायोंके कारण बनी थीं। उस समय कमसे कम आर्योंमें पारस्परिक विवाह तथा दूसरे सम्बन्ध हुआ करते थे, जिसके कारण इन जातियोंका बिलगाव उतना न था। किन्तु आज तो सभी जातियोंका अपना बिल्कुल स्वतंत्र संसार है। उनका शादी-ब्याह मरण-जीवन अपनी जाति तक ही सीमित रहता है, फिर दूसरी जातिकी अपेक्षा अपनी जातिमें अपनापन अधिक क्यों न हो? तो भी पहिले जातीयताका भाव इतना न था। किन्तु पिछली शताब्दीके अन्तसे उन्होंने अपने-अपने अलग जातीय संगठन करके, दूसरी जातियोंसे पृथक् रहनेके लिए गहरी खाई खोद ली है। आज इसके फलस्वरूप सार्वजनिक जीवनमें बड़ी घृणित गुटबंदी आ गई। प्रान्तसे लेकर जिलों तकमें जातियोंकी दलबन्दी देखी जाती है। जिधर सुनो उधर ब्राह्मणपार्टी, (इसमें भी मालवी, काश्मीरी, मैथिल, कान्यकुब्ज आदि) कायस्थपार्टी, (इनमें भी माथुर, श्रीवास्तव आदि) राजपूतपार्टी, भूमिहारपार्टी, जैसे नाम सुननेमें आते ही नहीं हैं, बल्कि जातिके नामपर उन्हें सफेदको स्याह और स्याहको सफेद करते देखा जाता है। सभी बातोंमें एक योग्य आदमी प्रोफेसरी या डिप्टी कलेक्टरी नहीं पा सकता और उससे बिल्कुल अयोग्य व्यक्ति उसमें कामयाब हो जाता है। वजह है—

अयोग्य व्यक्ति उस जातिका है जिसमें कि सिफारिश करनेके लिए वारसूख या उच्चपदस्थ आदमी मौजूद हैं। राजकीय नौकरियोंहीमें नहीं कई जगह तो शिक्षण-संस्थाओं तकमें यह भयंकर रोग चला आया है, और परीक्षक लड़कोंको अच्छी श्रेणीमें पास करनेमें जातिका ख्याल देखते हैं। व्यापार और दूसरे क्षेत्रोंमें ऐसा पक्षपात तो खानगी बात कहकर टाला जा सकता है।

जातियोंकी भाँति प्रादेशिकताका भेद भी भारतमें कम कड़वा रूप नहीं धारण कर रहा है। यहाँ भी वही कुत्सित पक्षपात देखा जाता है। किसी जगह एक आदमी पहुँच गया बस योग्य-अयोग्यका ख्याल न कर अपने प्रान्तवासियोंको भरनेकी कोशिश करता है। जाति-भाईकी भाँति प्रान्त-भाईके लिए भी कोई बेईमानी अकरणीय नहीं है। एक विश्व-विद्यालय के अध्यापकके बारेमें कहा जाता है कि वह कभी दूसरे प्रान्तीय-को अच्छे नम्बरमें नहीं पास करता। दूसरेके लिए कहा जाता है, उसने अपने प्रान्त-भाईकी नियुक्तिके लिए उसके नामसे निबन्ध तक लिख दिया। ऐसे लोगोंको यदि नजदीकसे देखें, तो आपको मालूम होगा वह बुरे नहीं हैं, बल्कि बाज़ तो आदर्श सज्जन हैं—तो भी वह ऐसा करनेपर मजबूर क्यों होते हैं? राष्ट्रके इस प्रकारके दूषित विभाजनके कारण।

कौंसिलों, डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों और म्युनिपैलिटियोंके चुनावोंके वक्त इन जाति, प्रान्त आदि भेदोंके कारण कितनी गंदगी फैलती है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। आगे हम धर्म सम्बन्धी हानियोंको बतलावेंगे किन्तु यह जाति और प्रान्तके भेद तो धर्मसम्बन्धी भेदसे भी अधिक ज़बर्दस्त हैं।

साम्यवादको छोड़, इनके दूर करनेका क्या कोई उपाय है? नहीं, क्योंकि आर्थिक लाभ और प्रभुताके स्थानोंके प्राप्त करनेकी सभीको चाह है। उस चाहकी पूर्तिके लिए जो भी काम हो, आदमी करनेके लिए तैयार हो जाता है। विवाह आदिके कारण सम्बन्धके घनिष्ठ होनेसे

जाति और प्रान्त की दुहाई उसके अपने अभीष्टमें अधिक सहायक मालूम होती है, और उससे वह फ़ायदा उठाना चाहता है। यह ऐसा फ़ायदा है, जिसमें बड़े-बड़े सिद्धान्तवादी तक फिसल जाते हैं।

यह सब तब हो रहा है—जब हर एक विचारशील भारतीय आसानी से जान सकता है कि उसके देशको पतित और पददलित करनेमें सबसे प्रधान कारण जाति-भेदकी बुरी प्रथा है, जिसने जातिको अनेक टुकड़ोंमें बाँटकर बिल्कुल निर्बल कर दिया। आप भारतीय इतिहासके किसी भी बड़े राष्ट्रीय पराभवको ले लीजिए उसमें जातिभेदको मूल कारणके तौरपर ज़रूर पायेंगे। असाम्यवादी राष्ट्रीय-विचारके लोग भी इस भयंकर रोगको समझते हैं, वह जानते हैं कि जब तक हम इस रोगसे मुक्त नहीं होते, तब तक स्वतंत्र साँस लेना हमारे लिए संभव नहीं। तभी तो वह अछूतोद्धार या जात पाँत तोड़नेमें सरगर्मी दिखला रहे हैं।

लेकिन सवाल यह है—यह आन्दोलन जो साम्यवादको अपने पास तक भी फटकने नहीं देते—क्या राष्ट्रके एकीकरणमें सफल हो सकते हैं? नहीं, यह संभव नहीं, क्योंकि जाति और प्रान्तके भेद अब सामाजिक भेद मात्र नहीं रह गये। अब तो इनके साथ आर्थिक भेद सम्मिलित हो गये हैं। आखिर ऊँची जातके समझदार लोग अछूतोंके उद्धारकी ओर इतनी सरगर्मी क्यों दिखला रहे हैं? वह समझते हैं—अब शिक्षाप्रचार और विदेशियोंके संसर्गसे उन लोगोंमें भी आत्म-सम्मानका भाव आ गया है, अब वह पीढ़ियोंके अपमानको और अधिक सहन करनेके लिए तैयार नहीं हो सकते। लेकिन बड़ी जातिवालोंके मन्दिरों और कुँओंके खोल देनेसे वह असंतोष, वह भेद क्या मिट जा सकता है? नहीं, क्योंकि मन्दिरोंके खोलनेसे कहीं अधिक कठिन है, अछूतोंके लिए सभी रोजगारोंमें प्रवेश करनेकी रुकावटका दूर करना। एक चमार क्या कपड़ेकी दूकान खोलकर बिना दीवाला निकाले बच सकता है? क्या फल, मिठाई और दूसरी दूकानें खोलनेमें भी उसकी वैसी ही दुर्गति न होगी? स्कूलोंके कितने हो अछूत अध्यापकोंका तो लोगोंने नाकमें

दम कर रखा है । दार्जिलिङ्ग ज़िलेके एक अछूत जातीय डाक्टरको, उनके हाथकी दवाई लेनेसे इन्कार करके ऊँची जाति वालोंने इतना तंग किया, कि उन्हें अपनी नौकरी छोड़कर बैठ जाना पड़ा । रोज़गारमें अछूतोंका बहिष्कार तो ऊँची जातिवालोंके लिए नफ़ेका सौदा है, वह कब उसे आसानीसे छोड़ने लगे । अछूतोंका तो मन्दिर और शास्त्रके बहिष्कारसे ही उद्धार हो सकता है; किन्तु यहाँ वही फंदे उन्हें फँसानेके लिए फेंके जा रहे हैं ।

उपरोक्त कथनसे स्पष्ट है, कि इन सामाजिक भेदभावोंने आर्थिक जीवनपर भारी प्रभाव डाला है । इनके द्वारा दलित जातियाँ आर्थिक दृष्टिसे भी दलित रक्खी जाती हैं । पूँजीवादके अनुसार तो हर एक व्यक्ति अपनी सम्पत्तिका स्वामी है, वह जैसे चाहे वैसे उसका उपयोग कर सकता है । फिर आर्थिक क्षेत्रमें उसपर कैसे ऐसा दबाव डाला जा सकता है, जिससे कि वह अपने अछूत भाईको भी आगे बढ़नेके लिए मौका दे ।

इन सामाजिक रोगोंकी दवा भी हमें साम्यवादसे ही मिलेगी, क्योंकि वह वैयक्तिक आर्थिक लाभकी जड़पर ही कुल्हाड़ा मारता है । विशेष आर्थिक लाभकी आशा न होनेपर कौन गुनाह-बेलज्ज़त करेगा ? मान प्रतिष्ठाके लिए ? सो तो योग्यतापर निर्भर है, वह सिफ़ारिशके आधारपर कितने दिनों तक टिक सकता है ? जातीय बंधनों और रूढ़ियोंके प्रधान समर्थक कौन होते हैं ? वही जिनके पास धन होता है । धनके कारण वह दूसरोंकी सम्मतिपर अपना प्रभाव डालते हैं । साम्यवाद उस धनको ही उनके हाथमें नहीं रहने देगा, फिर सेठ पूनमचंद और मँगतू बनिया या महाराजा चौपटनाथ और जगुआ रजपूतकी रायके प्रभावकी न्यूनाधिकता तभी होगी, जब उसके पीछे व्यक्तिकी निजी योग्यता हो । यह सभी जानते हैं, कि जात-बिरादरीमें अधिक चलती होनेके लिए विद्या, बुद्धि या सज्जनता उतनी आवश्यक चीज़ नहीं, जितना कि धन । जातिके पंचोंके हाथसे धन छीन लेनेका मतलब है, उनके

प्रभावको नष्ट कर देना। उसके बाद फिर बुद्धि और विद्याकी बात निष्पक्षतासे सुनी जायेगी, और फिर छोटी छोटी जातियोंको तोड़कर एक विशाल जातिके बनानेका अवसर मिलेगा। तब समान भाव रखनेवाले कायस्थ तरुण और ब्राह्मण तरुणीके विवाहको कोई न रोक सकेगा, और न असमान भाव वाले ब्राह्मण तरुण तरुणीको ब्याह करनेके लिए कोई मजबूर ही कर सकेगा। दरअसल गौरसे देखनेपर मालूम होगा, कि इन सामाजिक भेद-भावोंको दृढ़ता प्रदान करनेवाले हैं, उनके भीतरके आर्थिक स्वार्थ। एक बार उन आर्थिक स्वार्थोंको हटा दीजिए, फिर इस सारी विशाल इमारतके गिरनेमें देर न लगेगी। दूसरे सभी सुधार-आन्दोलन रोगकी जड़को न काटकर पत्तोंके नोचने जैसे हैं। चिरकाल तक होते रहनेपर भी उनका असर तह तक नहीं पहुँचेगा, और न अपना चिरस्थायी प्रभाव छोड़ेगा।

(६)

साम्यवाद और अच्छी सन्तान

हमारी सभ्य सरकारें अपने देशवासियोंके स्वास्थ्यपर ध्यान देती हैं। उन्होंने इसके लिए हजारों डाक्टर नियुक्त कर रक्खे हैं। इसी ख्यालसे नगरोंमें म्युनिसिपैलिटियाँ नालियोंकी सफाई आदिका काम करती हैं। [वस्तुतः म्युनिसिपैलिटियाँ जो सड़क-सफ़ाई, रोशनी, पानीका प्रबन्ध करती हैं, वह तो अधूरा साम्यवाद है। ठीकेदारको ठीका देनेपर यह काम भी नफ़ेका सौदा हो जाता है। जो लोग कहते हैं, साम्यवाद कामको सुचारु रूपसे तथा सुव्यवस्थित तरीक़ेसे नहीं कर सकता, उनके लिए संसारकी लंदन, पैरिस जैसी बड़ी-बड़ी म्युनिसिपैलिटियाँ उत्तर हैं, यद्यपि उनमें सड़क, पानी, रोशनी जैसी कुछ चीजोंका ही अधूरे तौरसे राष्ट्रीयकरण किया गया है] चिकित्सा, सफाई आदिपर जो इतना खर्च किया जाता है, वह इसीलिए कि जिसमें मनुष्य स्वस्थ हो, भयंकर बीमारियोंसे छूटे। किन्तु सबसे भयंकर बीमारियाँ तो पैतृक होती हैं; जिनके नाशके लिए बेहतर सन्तानका उत्पादन ही उपाय हो सकता है। आप कोढ़ जैसे घृणित रोगोंको ले लीजिए, जो एक ही व्यक्तिके लिए भयंकर नहीं होते बल्कि अनेक अगली पीढ़ियों तक बढ़ते ही जाते हैं। कुष्ठ कितना भयङ्कर रोग है? वह आदमीको लोगोंकी दृष्टिमें घृणित बनाता तथा उसे घुला-घुलाकर मारता है। यही नहीं, बल्कि आरम्भिक अवस्थामें वह अपने आस पासके लोगोंमें कुष्ठके लाखों कीटाणुओंके बाँटनेका काम करता है और अनेकोंको अपनी ही भाँति बनानेवाला होता है। और ऐसे कोढ़ीको जो सन्तान होती है, वह तो निश्चय ही कोढ़ी होती है। यदि किसी कारण दूसरी पीढ़ीमें असर नहीं दिखाई देता, तो तीसरी पीढ़ीमें जरूर आता है। यदि आप कुष्ठ-सम्बन्धी पुस्तकोंको

देखें तो मालूम होगा कि दुनियामें यह रोग कम होनेकी अपेक्षा बढ़ता ही जा रहा है। भारतमें बाँकुड़ा ज़िले जैसे स्थानोंमें तो इसकी वृद्धि बड़े ज़ोरोंसे हुई है। चम्पारनके एक गाँवमें पहले चार छः कोढ़ी हुए, पीछे बढ़ते-बढ़ते सारा गाँव कोढ़ियोंका हो गया।

कोढ़के रोकनेकी तदबीर आज कितने ही वर्षोंसे बड़े-बड़े डाक्टर सोच रहे हैं। यदि मनुष्य जातिको इस राक्षसके पंजेसे छुड़ानेका उपाय भी सूझता है, तो वह उसका प्रयोग नहीं कर सकती, क्योंकि पूँजीवाद नामके लिए तो अपनेको अराजकता और अव्यवस्थाका विरोधी प्रगट करता है किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति और उसके दुरुपयोगका खुला अधिकार दे, वस्तुतः वह उसका पृष्ठपोषक है। कमसे कम राष्ट्रकी दृष्टिसे तो कोढ़ लाइलाज बीमारी नहीं है। यदि कोढ़ियोंकी बस्ती अलग बसा दी जाय और उनमें सन्तान पैदा करनेकी स्वतन्त्रता छीन ली जाय, तो कोढ़ न आसपासके लोगोंमें फैल सकता है और न अगली पीढ़ियों तक जा सकता है। किन्तु इस कामको साम्यवाद ही कड़ाईके साथ कर सकता है, यह हम अभी बतलावेंगे। कारण ढूँढ़नेपर मालूम होगा कि पैतृक होनेके बाद कोढ़के सबसे भारी कारण वेश्यालय हैं। वेश्यालय क्या क़ायम रह सकते हैं, यदि धनका स्वामित्व व्यक्तिसे छीन लिया जाय? एक आदमी वेश्याके पास गुप्त या प्रकट रीतिसे तभी तो जाता है, जब उसे देनेके लिए उसके पास काफ़ी धन होता है। वेश्याको भी वेश्या वृत्ति करनेके लिए कामुकतासे अधिक धनका लोभ प्रेरक होता है; बल्कि उसे इन कोढ़ और आतशक जैसे जुगुप्सित रोगोंकी जननी बनानेमें तो यही धनका लोभ कारण है, जिससे कि वह सभी प्रकारके बहुतसे पुरुषों-की कामवासनाके तृप्त करनेके लिए मजबूर होती है। साम्यवादमें न व्यक्तिगत सम्पत्तिका स्थान है, न उसके दुरुपयोगका ही; इस प्रकार वह वेश्यालयोंका परम शत्रु है, और इस तरह उनके द्वारा फैलती कोढ़ आदि बीमारियोंका रोकनेका वह सर्वोत्तम उपाय है।

यद्यपि धर्मवाले वेश्यालयोंका विरोध करते हैं, तो भी उनका विरोध

लीपा-पोती मात्र है। उनमेंसे कितने ही तो पूजा-स्थानोंमें वेश्याओंका रखना ज़रूरी समझते हैं, और कितनोंके स्वर्ग वेश्याओं बिना सजाए नहीं जा सकते। हूरों—अप्सराओं—देवदासियोंकी आवश्यकता माननेवाले भला कब वेश्याओंका उन्मूलन कर सकते हैं ?

पूँजीवाद और व्यक्तिगत सम्पत्ति राष्ट्रके लिए अत्यन्त हानिकर और घृणित इस व्यवसायका कितना पृष्ठपोषण करते हैं, इसके लिए जरा आप अपने देशके राजा-महाराजाओं और धनिकोंकी ओर दृष्टि दौड़ाइए। उनके लिए तो खाने-पीनेकी भाँति वेश्याएँ भी जीवनकी एक आवश्यक वस्तु हो गई हैं। उनके यहाँ दरबारी वेश्याओंको नियमसे वेतन मिलता है। चाहे दूसरे राज-कर्मचारियोंका वेतन छः-छः महीने तक बाक़ी पड़ा रहे, किन्तु दरबारकी वेश्याके वेतनमें उतनी सुस्ती नहीं की जा सकती। दरबारसे मिलनेवाला वेतन एक तरहसे उस वेश्याके लिए नहीं, बल्कि सीधा कुष्ट, आतशकके प्रचारके लिए मिल रहा है।

यह स्पष्ट है कि कुष्ठकी यह भयकर समस्या जिससे सारी मानव जाति विकृत होती जा रही है, साम्यवाद द्वारा ही हल हो सकती है। धनके उपयोग और सन्तानकी अबाध उत्पत्ति—इन दो बातोंमें व्यक्तियोंको बेरोकटोक स्वतन्त्रता देना ही जातिमें चिररोगों, राजरोगों और घृणित रोगोंके बढ़ानेका कारण है। आज-कल यदि कोई पूँजीवादी सरकार इन रोगोंके रोक-थामके लिए क़ानून भी बनाती है, तो उसका प्रयोग ग़रीबोंपर ही हो सकता है। धनी अपने धनके बलपर क़ाफ़ी समय तक बचे रह सकते हैं, या क़ानूनके पंजेमें कभी आते ही नहीं। कुष्ठकी प्रथम अवस्था ही भयकर कीटाणुओंको फैलाती है, लेकिन उस समय रोगके अस्पष्ट, तथा अधिक वीभत्स न होनेसे धनिक 'कोढ़ी अपनेको कानूनके चंगुलसे बचा सकते हैं। और बाज़ वक्त तो आखिरी समय तक वह बेरोक-टोक सभा-समाज सभी जगह घूमते देखे जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि ऐसे व्यक्तिको घृणाका पात्र बनाया जाय; वह हमारी सहानुभूतिका ही सबसे अधिक पात्र नहीं है, बल्कि उसकी यंत्रणा और निराशापूर्ण

जीवनको देखकर, उसको जहाँ तक हो सके सुखी रखना भी समाजका कर्त्तव्य है; किन्तु उसे अपने जैसे हजारोंको पैदा करनेका मौक़ा देकर तो हम उसके साथ सच्ची सहानुभूति नहीं प्रदर्शित कर सकते।

कुष्ठके अतिरिक्त संसारमें और भी कितने ही रोग हैं, जिनके दूर करनेका उपाय चाहे हमारे हाथमें अधूरा ही आया हो, किन्तु संतति-निरोध और पृथक्करण द्वारा हम उनके प्रचारको तो बिलकुल रोक सकते हैं। यक्ष्मा या तपेदिकके रोगहीको ले लीजिए, जो कि घरमें एकको होनेपर सारा घर साफ़ कर देता देखा गया है। वह भी संसर्ग और संतानके द्वरा फैलता है। वर्तमान प्रणालीमें यह सब जानते, देखते भी हम कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता हर हालतमें पवित्र चीज़ है। चाहे एक घरमें आग लगनेसे सारा गाँव साफ़ हो जाय, पर तो भी हम अपने पड़ोसीको घर जलाकर होली खेलनेसे नहीं बाज़ रख सकते।

शारीरिक विकारोंके अतिरिक्त मानसिक विकारोंके सम्बन्धमें डाक्टरोंकी राय है कि बहुधा पिता-मातासे आते हैं। वस्तुतः आर्थिक विषमता और पैतृक रोगोंके प्रभावको हटा दिया जाय, तो हमारे क़ैदखाने खाली हो जायँगे। अपराधियोंमें ९० फ़ीसदी आर्थिक मजबूरीसे चोरी या मार-पीट करते हैं, और बाक़ी १० फ़ीसदीमें प्रायः सभी दिमाग़ी कमज़ोरी या क्षणिक पागलपनके कारण—जो कि दोनों प्रायः मौरूसी चीज़ें हैं—अपराध करते हैं। आज-कल इंगलैंडकी जैसी कुछ सरकारें ऐसे व्यक्तियोंके लिए सन्तति-निरोधका क़ानून बनाना चाह रही हैं; किन्तु क्या आप आशा रखते हैं कि धनी लोगोंपर उसका प्रयोग ठीकसे हो सकेगा? मानसिक रोगोंसे अधिक ग्रस्त तो प्रायः यही समुदाय देखा जाता है।

पशुओंकी बेहतर संतान पैदा करनेके लिए पिछली एक शताब्दीमें बहुत प्रयत्न किया गया है। स्वस्थ, बलिष्ठ जाड़ोंके चुनावसे वैज्ञानिक लोग अच्छी जातिकी गायें, घोड़े और दूसरे जानवरोंको पैदा करनेमें

सफल हुए हैं। उनका यह प्रयोग तो ऐसी अवस्थाको पहुँच गया है कि वे पैदा होनेवाले बछड़ेके रंग आदिके बारेमें पहलेसे ही दृढ़ताके साथ कह सकते हैं। लेकिन इसी पिछली शताब्दीमें मनुष्य जातिकी क्या दशा हुई ? उसकी तो शारीरिक, मानसिक अवस्था दिनपर दिन बिगड़ती जा रही है, यह बात स्पष्ट हो जायगी, यदि आप स्वास्थ्य तथा अपराध सम्बन्धी रिपोर्टोंको पढ़ें।

लेकिन इसके संबन्धमें कुछ थोड़ेसे चिकित्सालयों और कैदखानोंकी संख्या कुछ और बढ़ा देनेके अतिरिक्त उन्होंने क्या किया ? इनसे रोगका असली कारण थोड़े ही दूर हो सकता है ? मनुष्यके लिए सबसे आवश्यक तो है, बेहतर संतानका पैदा करना; और उसके लिए बिना रुकावटके प्रयोग करना। किन्तु आजके समाजके नेता पूँजीवादी और उनके क्रीतदास तथा धर्मके ठेकेदार प्रयोग क्या कभी इनपर स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार भी करने देंगे ? वे तो इसे यही कहकर टाल देना चाहते हैं—"यह सब ईश्वरका काम है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध धर्मका एक अंग है, उसमें किसीको दखल देनेका हक नहीं। मनुष्य पशु नहीं है; जो उसके सन्तान-उत्पादनको प्रयोगका विषय बनाया जाय। स्त्री-पुरुषके इस कोमल सम्बन्धको इस प्रकार नंगाकर देनेपर लज्जा और शरमका स्थान कहाँ रह जायेगा ?" इन शब्दों तक ही ये चुप रहनेवाले नहीं हैं, वे तो उसके विरोधमें अपनी सारी शक्ति लगा देनेवाले हैं। लेकिन उनके इस अन्धे बर्तावसे क्या परिस्थितिकी भयंकरता कुछ कम हो जायेगी ? भयंकरता तो दिनपर दिन बढ़ती ही जा रही है और तब तक बढ़ती जायेगी, जब तक कि उसके प्रतीकारके लिए मानवसमाज स्वयं कमर कसकर तैयार न हो जायेगा अच्छी तरह समझ न लेगा कि स्त्री-पुरुषके संयोगमें दो बातें हैं—एक कामकी तृप्ति, दूसरे संतानकी उत्पत्ति। पहली बातको आप खुशीसे निजी काम बना लें; लेकिन दूसरी बात सारे मनुष्य-समाज—मौजूदा और आनेवाले दोनों—से सम्बन्ध रखती है; उसे निजी काम नहीं बनाया जा सकता वैसे ही जैसे कि चोरी

और मार-पीटको निजी काम नहीं बनाया जा सकता। और आज-कल विज्ञानने तो ऐसे उपाय बतला दिये हैं, जिससे इन्द्रिय-तृप्तिकी योग्यताको रखते हुए सन्तान-उत्पादनकी योग्यता दूर की जा सकती है। शरीर-मनकी निर्बलतायुक्त ही सन्तान पैदा कर सकनेवाले व्यक्ति सन्तान-उत्पत्तिके लिए ज़िद करनेका क्या अधिकार रखते हैं? और ऐसी ज़िदको समाज क्यों माने? यदि उस ज़िदके कारणपर भी आप विचार करें, तो उसके पीछे माता-पिताका मतलब है—बीमारी और बुढ़ापेके लिए सहारा ढूँढ़ना और अपनी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी छोड़ना। साम्यवादमें बुढ़ापे और बीमारीमें भरण-पोषणकी ज़िम्मेवारी राष्ट्र लेता है, और व्यक्तिगत सम्पत्तिका वहाँ स्थान ही नहीं है; इसलिए वहाँ सन्तान-उत्पत्तिके दुराग्रहके ये दो प्रधान कारण ही असम्भव हैं।

---

(७)

साम्यवाद तथा धर्म और ईश्वर*

धर्म या मज़हबका असली रूप क्या है? मनुष्य-जातिके शैशवकी मानसिक दुर्बलताओं और उससे उत्पन्न मिथ्या विश्वासोंका समूह ही धर्म है। यदि उसमें और भी कुछ है, तो वह है पुरोहितों और सत्ता-धारियोंके धोखे-फ़रेब, जिनसे वह अपनी भेड़ोंको अपने गल्लेसे बाहर जाने देना नहीं चाहते। मनुष्यके मानसिक विकासके साथ-साथ यद्यपि कितने ही अंशोंमें धर्मने भी परिवर्तन किया है, कितने ही नाम भी उसने बदले हैं, तो भी उनसे उसके आन्तरिक रूपमें परिवर्तन नहीं हुआ है। वह आज भी वैसा ही हज़ारों मूढ़ विश्वासोंका पोषक और मनुष्यकी मानसिक दासताओंका समर्थक है, जैसा कि पाँच हजार वर्ष पूर्व था। सूत्र वही हैं, सिर्फ़ भाष्य बदलते गये हैं। यही भूत-प्रेत, ओझा-गुणी हैं, जिनको देखकर शिक्षित-वर्ग नाक-भौं सिकोड़ता है—कुछ गौड़ोंकी बात छोड़ दीजिए, वैसे क़दरदान शिक्षितोंमें आजकल दुर्लभ हैं—लेकिन उन्हीं बातोंको यदि नये रूपमें थ्योसोफीकेसे लच्छेदार शब्दों तथा साइंसकी पुटके साथ जब पेश किया जाता है, तो बड़े-बड़े दिमाग़वाले, अक़्ल बेंच खानेके लिए तैयार हो जाते हैं। यदि आप मज़हबोंके इतिहास, उनके भूत और वर्तमान नेताओंकी जीवनियोंको ध्यानपूर्वक नज़दीकसे पढ़ें, तो मालूम होगा, कि मज़हबमें पहिले नम्बर पर पक्के धूर्त या पागल ही पहुँच सकते हैं। भारतमें ऐसे सिद्ध और पहुँचे हुए महापुरुष बहुतसे हैं और हुए हैं, जिनके आचरणको भीतरसे

* ज्यादा जाननेके लिए पढ़िए मेरा "वैज्ञानिक भौतिकवाद" पृष्ठ १५१-४, १६०-७५

देखनेपर वह रस्-पुटिनके छोटे-बड़े संस्करण सिद्ध होंगे। एक पवित्र नगरमें कुछ समय पूर्व एक परमत्यागी महात्मा रहते थे। उनके जीतेजी ही लोग उन्हें सिद्ध जीवन्मुक्त मानकर पूजा करते थे, पीछेकी तो बात ही क्या? स्थानीय जानकर लोग उनकी रखेलीके दो पुत्रोंकी ओर अँगुली उठाकर कहते थे—महात्माका कितना ही चढ़ावा अपनी इन सन्तानोंको धनी बनानेमें लगा। एक दूसरे पवित्र नगरके एक सिद्ध महात्मा थे जिनके मरे बहुत समय नहीं गुज़रा है और जिन्हें उनके भक्त भगवान्‌के अवतार समझते थे। बाहरके कितने ही अन्धे भक्त उनकी विचित्र रहन-सहन, वेष-भूषा, आकार-प्रकारसे प्रभावित हो गद्‌गद् हो जाते थे। लेकिन इन सिद्धका भीतरी जीवन कैसा था? पहिले वह जिस स्थानमें रहते थे, वहाँ एक नौकरानीके साथ उनके अनुचित सम्बन्धको देख लोग मार-पीट करनेके लिए उतारू हो गये, जिसके मारे वह भागकर अपने ही जैसे एक दूसरे सिद्ध पुरुषके स्थानमें चले गये। व्यक्तिगत अनुभवसे ऐसे पचासों उदाहरण बतलाये जा सकते हैं। इन उदाहरणोंको देखकर मनुष्यकी बुद्धिपर तरस आता है, उन धूर्तोंके लिए तो नहीं, उनका तो मत ही है—'रोटी खाइये घी शक्करसे, दुनिया ठगिये मक्करसे।' यदि किन्हीं सिद्धोंमें इस धोखा-धड़ीसे कुछ अधिक है, तो वह है, हेप्नाटिज्म या त्राटककी कुछ मानसिक शक्तियाँ, जिनके बलपर वह और उनके अनुयायी हज़ारों झूठोंका प्रचार करते हैं, और भरसक यह भी कोशिश करते हैं, कि विद्वान् उनका वैज्ञानिक विश्लेषण न कर सकें।

धर्म और ईश्वरका प्रायः अटूट सम्बन्ध है। अच्छा तो ईश्वर क्या है?—यह भी मनुष्यके शैशव-कालके भयभीत अन्तःकरणकी सृष्टिका एक विकसित रूप है। मनुष्य वन्य-अवस्थामें—जब कि उसकी बुद्धिका विकास साधारण बच्चेके ही समान था—अँधेरे, अपरिचित स्थान और वस्तुसे भय खाता था। बिजली, आग जैसे शक्तिशाली पदार्थ तो उसके लिए और भी भयका कारण होते थे, और उसने उनमें

देवताओंकी कल्पना की। उसके अपने समयके बली और वीर पुरुष भी मरकर धीरे-धीरे इस देव-मण्डलीमें शामिल होते गये। हर एक जातिमें ऐसे अनेक देव-समुदाय थे, जिनके कि प्रभाव और बड़प्पनके लिए उनकी आपसमें प्रतिद्वन्दिता रहती थी। स्वयं अपनी जातिके भीतरके देवताओंमें भी बड़े-छोटेका ख्याल था। पीछे मानवसमाजके सामन्तों और महासामन्तों को देख "कौन बड़ा" "कौन बड़ा" की तलाशने "संसारके निर्माता" एक ईश्वरकी सृष्टि की; और मानसिक विकासके साथ-साथ उसे कितने ही और भी उत्तम गुण प्रदान किये गये। यह हुई ईश्वरकी उत्पत्ति। वस्तुतः ईश्वर मनुष्यका मानस पुत्र है।

हम इससे इन्कार नहीं करते कि ईश्वरका अस्तित्व—चाहे कल्पना ही के संसारमें हो, तो भी अतीतकालमें इस विचारके कितने ही लोगोंको सन्तोष और सहारा मिला होगा। लेकिन साथ ही उसके कारण मनुष्यको यातनाएँ भी लाखों सहनी पड़ीं। एक ईश्वर माननेवाले धर्मोंकी अपेक्षा अनेक देवता माननेवाले धर्म हज़ार गुना उदार रहे हैं। उनके ईश्वरों-की संख्या अपरिमित होनेसे वहाँ औरोंका समावेश आसानीसे हो सकता था। किन्तु एक ईश्वरवादी वैसा करके अपने अकेले ईश्वरकी हस्तीको खतरेमें नहीं डाल सकते थे। आप दुनियाके एक-ईश्वरवादी धर्मोंके पिछले दो हज़ार वर्षके इतिहासको उठाकर देख डालिए, मालूम होगा, कि वह सभ्यता, कला, विद्या विचार-स्वातंत्र्य और स्वयं मनुष्यके प्राणोंके भी सबसे बड़े शत्रु थे। उन्होंने हज़ारों बड़े-बड़े पुस्तकालय और करोड़ों पुस्तकें आगमें डाल दीं। सौन्दर्य और कोमल भावोंके साकार रूप, कितने ही कलाकारोंकी सुन्दर मूर्तियों, चित्रों और इमारतोंको नष्ट कर दिया। हज़ारों विद्या-व्यसनियों और विद्वानोंके जीवनको समाप्त कर, स्वतन्त्र-विचारोंका गला घोंटा। मनुष्यकी मानसिक प्रगतिको कमसे कम एक हज़ार वर्ष तकके लिए उन्होंने रोक ही नहीं रक्खा, बल्कि पहिलेकी प्राप्त सफलताओंके प्रभावको बहुत-कुछ नष्ट कर डाला। और करोड़ों निर्दोष नर-नारियों और बच्चोंकी

हत्या ! यह तो उनके अपने धर्म प्रचारका एक प्रधान साधन थी। वह जिस-जिस देशमें गये, आग और तलवार लेकर गये। पहले तो इनके फन्देमें फँसी जातियाँ अफ़ीमके नशेमें थीं, उन्हें इसका ख्याल ही न हो रहा था, कि उनकी संस्कृति चिरसञ्चित जातीय निधि नष्ट की जा रही है। पीछे जब नशा टूटा, तो देखा कि पूर्वजोंकी सभी उत्तम कृतियाँ नष्ट कर दी गईं। जर्मन-जातिमें ईसाइयोंका एक-ईश्वरवाद तलवारके बल ही फैलाया गया। उस समय पुराने धर्मके साथ-साथ जर्मन जातिका व्यक्तित्व भी मिटा देना आवश्यक समझा गया। उनकी लिपिको धत्ता बताया गया। उनके साहित्यको खोज-खोजकर जलाया गया। उनके मन्दिरोंको ही बर्बाद नहीं किया गया, बल्कि यह सोचकर कि कहीं ये लोग अपने ओक-वृक्षोंकी पूजा करके धर्म-भ्रष्ट न हो जायें लाखों विशाल ओक-वृक्ष काट डाले गये। एक-ईश्वरवादियोंके ऐसे कारनामे एसियाके ही नहीं, अमेरिकाकी माया और अज़े तक जैसी सभ्यताओंके संहारके कारण हुए। अपने नामपर सैकड़ों वर्षों तक इस प्रकारके भयंकर अत्याचार करते, खूनकी नदी बहाते देख भी, यदि ईश्वर रोकनेके लिए नहीं आया, तो इससे बढ़कर उसके न होनेका और दूसरा प्रमाण क्या चाहिए ?

कहा जा सकता है, अब धर्म और ईश्वर उतने ख़तरनाक चीज़ नहीं है, किन्तु बात क्या वैसी है ? क्या धर्मके विषवाले दाँत तोड़ दिये गये ? कम-से-कम भारत तो इस समय भी इसके मारे परेशान है। बराबर धर्मान्ध लोग खून-ख़राबी करते ही जा रहे हैं। आप कहेंगे—यह धर्मका दोष नहीं, यह तो प्रभुता और धनके लिए हो रहा है। यह बिलकुल ठीक है। एक-ईश्वरवादियोंके बड़े-बड़े युद्धके भीतर भी प्रभुता और धनका लोभ ही काम कर रहा था। प्रभुता और धनके लोभकी, वस्तुतः, वह उपज है भी; तो भी साधारण जनताके सामने उन्हें बड़े सौम्य और मोहक रूपमें रखा जाता है। चाहे आप कितना ही परिष्कृत करना चाहें, शुद्ध-से-शुद्ध बना दें, धर्म पुरानेका पूजक और भविष्यकी

प्रगतिका विरोधी रहेगा ही। वह तो श्रद्धा और भक्तिके नामपर हमारे गलेमें मुर्दा बाँधनेका ही प्रयत्न करेगा। यह संसार जो प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है, और परिवर्तन भी ऐसा कि इसका अतीत हमेशा अतीत ही रहेगा, वर्तमानका रूप नहीं धारण कर सकेगा। ऐसी स्थिति होनेपर स्थिरतावादी धर्म हमारे कभी सहायक नहीं हो सकते। जगतकी गतिके साथ हमें भी सर्पट दौड़ना चाहिए, किन्तु धर्म हमें खींचकर पीछे रखना चाहते हैं। क्या हमारे पिछड़नेसे संसार-चक्र हमारी प्रतीक्षाके लिए खड़ा हो जायेगा ? सामाजिक विषमताके नाश, निकम्मी और अनपेक्षित सन्तानके निरोध, आर्थिक समस्याओंके नये हल—सभी बातोंमें तो यह मजहब प्राणपनसे हमारा विरोध करते हैं; हमारी समस्याओंको और अधिक उलझाना और प्रगति-विरोधियोंका साथ देना ही एकमात्र इनका कर्तव्य रह गया है।

आप कहेंगे—आप पिछली सदीकी बात कर रहे हैं, जब कि बड़े बड़े वैज्ञानिक प्रायः अधार्मिक होते थे; अब तो कितने ही चोटीके वैज्ञानिक* सीधे रास्तेपर आ रहे हैं, और ईश्वर तथा धर्मके पोषक बन रहे हैं। हाँ, यदि भीतरी रहस्य न जानकर नामपर जायेंगे, तो आपको ज़रूर ऐसा भ्रम होगा, किन्तु विज्ञान बेचारेका इसमें कोई दोष नहीं। आजकल तो सारा संसार, बिना अपवादके, दो पक्षोंमें बँट गया है—एक ओर वे लोग हैं, जो व्यक्तियोंके आर्थिक स्वार्थोंको अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, अर्थात् जो जाने या अजाने प्रकट या अप्रकट रूपसे पूँजी-वादके पोषक हैं; दूसरी ओर वे हैं, जो समाजका कल्याण चाहते हैं, और उसके लिए साम्यवादका समर्थन करते हैं। पिछली सदीमें भी ऐसे वैज्ञानिक रहे होंगे, जिन्हें व्यक्तिके आर्थिक स्वार्थोंको अक्षुण्ण रखना अभीष्ट था; किन्तु तो भी वह धर्मके विरुद्ध अपनी स्पष्ट सम्मति दे

* इस तरहके चोटीके वैज्ञानिकोंके बारेमें पढ़िए "वैज्ञानिक भौतिक-वाद" पृष्ठ १७५-८०

सकते थे। कारण ? उस समय साम्यवाद हवाकी बात थी। उसकी सफलताका उन्हें विश्वास न था। किन्तु, अब साम्यवाद भूमिकी ठोस चीज़ है। अब वह विकृत मस्तिष्कोंकी बल-बलाहट नहीं रह गया। इसीलिए पूँजीवादी जहाँ साम्यवादके खिलाफ दूसरे तरह-तरहके षड्यन्त्र रच रहे हैं, वहाँ भय और प्रलोभन द्वारा कितने ही ढिलमिल-यक़ीन वैज्ञानिकोंसे भी अपने पक्षमें सम्मति लेते हैं। लेखकके इंग्लैंडमें रहते समय एक प्रामाणिक पुरुषने नोबुल-पुरस्कारप्राप्त एक वैज्ञानिकके बारेमें कहा था—"जानते हैं; अमुक सज्जन धर्म और मिथ्या-विश्वासके प्रचार-में इतनी सरगर्मी क्यों दिखाते हैं ? इनका वैज्ञानिक दिमाग़ खतम हो चुका है। जिस विश्वविद्यालयमें यह अध्यापक हैं, वह एक प्रकारसे अमुक करोड़पतिके परिवारकी निजी चीज़-सी है, और यह वैज्ञानिक महा-शय किसी रूपमें कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।" हम नहीं कहते कि धर्मका पक्ष लेनेवाले सभी वैज्ञानिक इसी श्रेणीके हैं। कितने तो स्वयं पूँजीपति हैं, इसलिए वह पूँजीवादकी रक्षाके महान् अस्त्र—धर्मका पक्ष ग्रहण करना चाहते हैं। कितने ही, श्रमजीवियों-के जीवनकी कठिनाइयोंको जानते हैं, और उस श्रेणीमें सम्मिलित होनेसे डरते हैं। और, कुछ; उस आयुको पहुँच गये हैं, जब अतीतकी अत्यन्त आसक्ति मनको नए विचारोंके ग्रहण करनेमें असमर्थ कर देती है। मनुष्यकी आयुके पहिले चालीस पैंतालीस वर्ष ही ऐसे हैं, जबकि वह स्वच्छन्दतापूर्वक चिन्तन और विचार-विनिमय कर सकता है; पीछे गोधूलीके धुँधलेपनमें उसे अतीतकी स्मृतिके सहारे पुरानी बातें ही दिखलाई देती हैं। संसारमें इस नियमके अपवाद बहुत ही कम होते हैं।

इस प्रकार सारी दुनियाके विचार पक्ष और विपक्षमें बँटे हुए हैं; ऐसी अवस्थामें किसीकी सम्मतिको पकड़कर चलना उचित नहीं है। आपको अपनी बुद्धि स्वतन्त्र रखनी होगी, और उसीको अन्तिम निर्णायक मानना होगा।

ईश्वरकी उत्पत्तिके बारेमें हम कह आये हैं। यहाँ उसके अस्तित्वके बारेमें हम नीरस बहस* करना नहीं चाहते; किन्तु यह ज़रूर कह देना चाहते हैं, कि ईश्वरका मानना इस बातको भी माननेके लिए प्रेरित करता है, कि संसारके मालिक उस ईश्वरकी भाँति यहाँ भी एक राजा या कर्त्ता-धर्ता होना चाहिये। सहस्राब्दियों तक राजा लोग ईश्वरके प्रतिनिधिके रूपमें शासन भी करते रहे हैं। साम्यवाद सारी शक्तियोंका जनतामें उसी प्रकार समावेश चाहता है, जिस तरह वह संसारकी सारी शक्तियोंको किसी ख्याली ईश्वरके हाथमें न मान प्रकृतिमें समाविष्ट समझता है। ईश्वरका विचार हमारे सभी कामोंमें कठिनाई पैदा करता है। ईश्वरका ख्याल ही यह सिखलाता है, कि हम अपने मालिक नहीं। कितने ही धर्म इसलिए सन्तान-निरोधके विरोधी हैं कि मनुष्यको ईश्वरके काममें दखल देनेका अधिकार नहीं है। यदि जनसंख्या कम करना उसे मंजूर होगा, तो वह उसके लिए बड़ा काम नहीं है। पिछले वर्ष हम कश्मीर-राज्यके बाल्तिस्तान प्रदेशमें थे। वह तृण-वनस्पति-शून्य पहाड़ी स्थान है। वहाँ इच्छानुसार पानीकी नहरों और खेतोंके बनानेका सुभीता भी उतना नहीं है। हम लोग जाते वक्त रास्तेके एक गाँवमें ठहरे थे। गाँव वालोंकी गरीबी वर्णनातीत थी। पूछनेपर मालूम हुआ, आधी सदी पहिले इस गाँवमें सिर्फ़ पाँच घर थे, और अब बीस हैं। ये लोग कुछ शताब्दियों पूर्व बौद्ध थे। और अपने धर्म-भाई तिब्बतवासियोंकी भाँति बहुपतित्वके माननेवाले थे। तिब्बतमें सभी भाइयोंकी एक स्त्री होनेका कारण था, जनवृद्धिकी भीषणताका रोकना; किन्तु, जब यह लोग मुसलमान हो गये तब खुदाके भरोसेपर लगे बच्चे पर बच्चे पैदा करने। हमारे जर्मन मित्रने उनसे पूछा—जब तुम्हारे यहाँ खेतोंकी इतनी कठिनाई है, और जीवन-निर्वाह बहुत ही मुश्किल है, तो क्यों इतने बच्चे पैदा करते हो? उत्तर मिला—जो बच्चोंको

* इसके लिए देखिए "वैज्ञानिक भौतिकवाद" पृष्ठ १५१-५४, १६८-७२

देता है। (अर्थात् खुदा), क्या वह उनको नहीं सँभालेगा ! हमारे मित्रने कहा—हाँ, वह न सँभालेगा, तो हैज़ा-चेचक, भूख-अकाल तो ज़रूर सँभाल लेंगे। ल्हासामें एक मुसलमान सज्जनने अपना विश्वास इस प्रकार प्रकट किया—हमारे धर्मके अनुसार, यदि माँ-बापको काफी सन्तानें हो जायें, तो उनके लिए हज करना आवश्यक नहीं रह जाता। हिन्दू भी तो "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" कहते हैं।

इस प्रकार आप जितना ही सोचेंगे, मालूम होगा, ईश्वरका ख्याल हमारी सभी प्रकारकी प्रगतियोंका बाधक है। मानसिक दासताकी वह सबसे ज़बर्दस्त बेड़ी है। शोषकोंका वह ज़बर्दस्त अस्त्र है, क्योंकि उसके सहारे वह कहते हैं—'धनी गरीब उसीके बनाये हुए हैं', 'वह जो करता है, सब ठीक करता है,' 'उसकी मर्ज़ीपर अपनेको छोड़ दो,' 'क्या जानें इन चन्द वर्षोंके कष्टके लिए मरनेके बाद उसने क्या-क्या आनन्द आपके लिए तैयार कर रक्खे हैं ?' 'वह यंत्रचालककी भाँति सभी प्राणियोंको चला रहा है', 'मनुष्य उसके हाथकी कठपुतली है।' ये ख्याल क्या हमें अपने भविष्यका मालिक बनने देंगे ?

आप यह तर्क नहीं बघाड़ सकते—यदि ईश्वर नहीं, तो संसारको बनाता कौन है ? क्या हरएक चीज़के लिए बनानेवाला बहुत ज़रूरी है ? यदि है, तो ईश्वरका बनानेवाला कौन है ? यदि वह स्वयंभू है, तो वही बात प्रकृतिके बारेमें भी क्यों नहीं मान लेते ?

आपको ध्यान रखना चाहिये, कि ईश्वर पूँजीवादियोंके बड़े कामकी चीज़ है। यदि ईश्वरका ख्याल पहिलेसे न होता तो आज वह उसका आविष्कार करते। यही वजह है, जो कि थके दिमागवाले, शोषकोंके पोषक कितने ही वैज्ञानिक* धर्म, और ईश्वरके समर्थक देखे जाते हैं।

यदि भारतकी दृष्टिसे देखा जाये, तब तो जब तक धर्म है, तब तक उसे शान्ति और स्वतन्त्रताका स्वप्न छोड़ देना चाहिए।

---

* "वैज्ञानिक भौतिकवाद" पृष्ठ १७५-८०

(८)

साम्यवाद और स्त्रियोंकी परतंत्रता*

वैसे तो अधिकांश पुरुष भी प्राचीन कालसे अबतक पराधीनताका ही जीवन बिताते आ रहे हैं, किन्तु स्त्रियोंकी अवस्था तो इस विषयमें और भी बुरी रही है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताड़नके अधिकारी—एक सर्वमान्य कहावत बन गई है। "स्त्री स्वतंत्रताके योग्य नहीं" (पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति) से मानो उसे दासताका पट्टा मिल गया है। यूरोपके ईसाई पुरोहित तो कुछ शताब्दियों पूर्व तक, "स्त्रीमें आत्मा नहीं है" इस बातपर गंभीरतापूर्वक व्यवस्था दिया करते थे। हिन्दुओंने स्त्रीको पतिकी अर्धाङ्गिनी माना है,* और पतिके मरनेपर उसका आधा अंग पत्नी भी मर ही जाती है; इसीको साबित करनेके लिए अभी पिछली शताब्दी तक हर साल भारतमें हजारों विधवाएँ पतिकी लाशके साथ जला दी जाती थीं। किन्तु, उसी अर्धाङ्गके नियमको पतिके लिए कभी स्वीकार नहीं किया गया! असलमें तो सभी देशोंमें पुरुषोंके लिए स्त्रियोंसे भिन्न कानून और व्यवस्थाएँ रही हैं। हिन्दुओंका पतिव्रत-धर्मका गला फाड़-फाड़कर, मौके-बे-मौके उपदेश, ढोंग और वंचनाकी पराकाष्ठाका भारी उदाहरण है।

हजारों वर्षोंसे स्त्रियोंके विरुद्ध पक्षपातका एक भारी वायु-मण्डल तैयार कर दिया गया है। धर्म-आचार-समाज सम्बन्धी बातोंमें उनके लिए पुरुषोंसे बिल्कुल ही अलग कसौटी बनाई गई है। ठीक न सोच सकने तथा मतिभ्रम पैदा करनेके लिए लड़कपनसे कान भर-भरकर

* विस्तारके लिए देखिए "मानवसमाज" पृष्ठ ३०६-१६

उनमें सबसे अधिक धार्मिक कट्टरता पैदा कर दी गई है; और अभी हाल तक, और किन्हीं-किन्हीं मुल्कोंमें तो आजतक उन्हें विद्यासे भी वंचित कर रक्खा गया है। पर्दा जैसी असहनीय रस्में उनके लिए खास तौरसे गढ़ी गईं, तथा धर्मोंने अपने मान्य ग्रन्थों द्वारा ईश्वरीय आदेश ठहराकर उन्हें पुष्ट किया। सबसे भारी गुलामीकी जंजीर जो उनके पैरोंमें डाल दी गई है, वह है उनकी आर्थिक परतंत्रता।

पश्चिममें भी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताका आन्दोलन अभी पिछली शताब्दीसे है। और भारतमें तो उसका अभी-अभी आरम्भ हो रहा है। तो भी जिस प्रकारसे लोग स्त्रियोंको स्वतन्त्रता दिलाना चाहते हैं, क्या उससे स्त्रियाँ स्वतन्त्र हो सकती हैं? "स्वतंत्रता" "स्वतंत्रता" चिल्लाना बनावट और एक व्यर्थकी बातसे बढ़कर नहीं है; जबतक कि वह आर्थिक तौरसे स्वतंत्र नहीं: जबतक कि विवाह उनके लिए जीवन निर्वाहका एक पेशा बना हुआ है। आर्थिक स्वतंत्रतासे मतलब है, स्त्री अपनी जीविकाके लिए किसी दूसरेकी मुहताज न हो। भारतमें तो सामाजिक पक्षपात और अत्याचारने इच्छा रहते और अवसर मिलनेपर भी वैसा करनेकी स्वतन्त्रता नहीं रहने दी है। पाश्चात्य देशोंमें भी वह उतनी आज़ाद नहीं हैं। फासिस्त जर्मनीने तो कानून बनाकर विवाहिता स्त्रीको नौकरी करनेसे रोक दिया है। उसके ख्यालसे विवाहका पेशा तो उसे मिल गया ही है, फिर वह दो-दो पेशा कैसे हथिया सकती है?

यदि स्त्रियाँ अपनी रोजी आप कमाने लगें; भोजन, वस्त्र, मकान, सैर-तफरीहके लिए उन्हें पुरुषोंके सामने हाथ न पसारना पड़े; प्रसव-काल बीमारी और बुढ़ापेमें उन्हें पति और पुत्रोंके ही भरोसेपर न रहना पड़े; तभी वह वस्तुतः स्वतन्त्र हो सकती हैं। किन्तु, क्या पूँजीवादमें यह सब सम्भव है? इसमें शक नहीं पूँजीपति अपने कारखानोंमें स्त्रियोंको जगह देते हैं। वह यह भी गर्व कर सकते हैं—हम लोग प्राचीनकालके पक्षपातको हटाकर स्त्रियोंको अपनी रोजी कमानेका स्वतत्र अवसर देना चाहते हैं। किन्तु यह उनकी एक चाल मात्र है। वह कारखानोंमें

स्त्रियों और बच्चोंको काम इसलिए देते हैं; कि ऐसा करनेसे उन्हें मजदूरी कम देनी पड़ेगी। उसी कामके लिए यूरोपमें यदि पुरुषको तीन रुपये रोज मजदूरी मिलती हैं, तो स्त्री डेढ़ ही रुपयेमें मिल जाती है। इस प्रकार स्त्रियोंकी भर्तीसे हजारों पुरुष बेकार बना दिये जाते हैं। हम पहले कह आये हैं, कैसे पूँजीवादियोंका स्वार्थ करोड़ों आदमियोंके बेकार करनेका कारण बन रहा है। कुछ स्त्रियोंको कामपर लगानेसे उनका मतलब यही है, कि वह मजदूरोंके श्रमका और अधिक भाग आसानीसे लूट सकें।

स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता साम्यवाद ही द्वारा प्राप्त हो सकती है; क्योंकि साम्यवाद जीवनके सभी क्षेत्रोंमें उन्हें बराबरका स्थान ही नहीं दिलाना चाहता, बल्कि उन्हें आर्थिक तौरसे भी स्वतन्त्र देखना चाहता है। वह हर एक स्त्रीको अपनी रोजी आप कमानेका समर्थक है, और इस प्रकार उसे पुरुषके समकक्ष होनेका अवसर देता है। साम्यवाद यंत्रोंका सहारा नफेके लिए नहीं करता बल्कि मनुष्योंके जीवनकी उपयोगी वस्तुओंको जल्दी और पूर्णरूपेण मुहय्या करने, तथा सांस्कृतिक कार्य तथा जीवनका सुख लेनेके लिये अधिक अवकाश देनेके लिए करता है; वह कलों-कारखानों, दफ्तरों, सेनाओं सभी जगह स्त्रियोंका अबाध्य प्रवेश इसलिए नहीं चाहता; कि उनके श्रमको लूटा जाये, या पुरुषोंको बेकार बनाया जाय। वह तो इस कामको सिर्फ स्त्री जातिकी पूर्ण स्वतन्त्रता और विकासके लिए करता है। साम्यवादी देश (आज भी जब कि आदर्श तक पहुँचनेमें बहुत चलना है) इस बातके जीवित उदाहरण हैं। वहाँ स्त्रियोंको पुरुषोंके समान काम करने तथा वेतन पानेका अवसर दिया गया है। प्रसवके पूर्व और पीछेकी दुर्बलावस्थामें तीन महीनेके अवकाशके साथ उन्हें पूरा वेतन मिलता है। इसी प्रकार बीमारी और असमर्थताके समय भी राष्ट्र उनके भरणपोषणका भार अपने ऊपर लेता है। यह काम पूँजीवादके बूतेके बाहरका ही नहीं है, बल्कि यह तो थोड़े ही समयमें उसका दीवाला निकाल सकता है। सबको काम

और काम न कर सकनेपर भी पूरा वेतन—यह सोचनेमें भी उसके दिमागमें मूर्छा आये बिना नहीं रहेगी।

कितने लोग कह उठते हैं—"इस प्रकारकी आर्थिक स्वतंत्रता यदि स्त्रियोंको मिल जाये, तो पारिवारिक सुख संसारसे उठ जायेगा। पति-पत्नीका मधुर सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। माता-पिता और सन्तानका वह पवित्र पैतृकस्नेह अतीतकी बात हो जायेगी। स्त्री पुरुषके सदाचारमें भयंकर क्रान्ति हो जायेगी, और मानव-जीवन पशु-जीवनमें परिणत हो जायेगा।"

यह सब बातें वही कहते हैं, जिनके लिए स्त्रीका व्यक्तित्व कोई चीज़ नहीं। बल्कि जो इन आडंबरपूर्ण सारहीन बातोंके लिए, अथवा पुरुषोंकी सीमातिक्रान्त करनेवाली स्वतंत्रताके लिए बकरेकी भाँति स्त्रियोंकी बलि देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं; अथवा संसारके "सदाचारियों"की भीतरी गन्दगीपर जान-बूझकर आँख मूँदना चाहते हैं। साम्यवादी "मानव-जीवन" और "पशु-जीवन"के शब्दोंसे डर जानेवाले नहीं हैं, क्योंकि वह जानते हैं, कि पशु-जीवन जितना पूँजीवादमें है, उसका शतांश भी साम्यवादमें संभव नहीं। धनके बलपर क्या धनी लोग संसारमें रोज़ लाखों स्त्रियोंको अपनी काम-वासनाकी तृप्तिके लिए मजबूर नहीं कर रहे हैं? क्या धर्मधुरंधर, सदाचारका ढिंढोरा पीटनेवाले राजा-महाराजाओं, बादशाहों, नवाबोंके रनिवास और हरम उस पशु-जीवनके सबसे बड़े अड्डे नहीं हैं! "सदाचार" की ढोल पीटनेवालोंका अपने उस सदाचारकी—जिसकी भीतरी गंदगी उस गहरे रोमाञ्चकारी सण्डास-सी है जिसका मुँह भर एक पतली सफेद चादरसे ढँक दिया गया हो—डींग मारना निर्लज्जताकी पराकाष्ठा है। उनके इस ढोंगको इनकार करनेसे नकटे पंथमें शामिल लोग, या खरीदे दास ही हिचकिचायेंगे। साम्यवादी जरूर चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष, क्या सारी दुनिया एक दूसरेको धोखा न दे, वञ्चना और प्रतिज्ञा-भंग न करे। किन्तु वह यह भी जानते हैं, कि प्रेम एक पक्षको पंगु बनाकर, या रुपयोंसे खरीदकर, या किसी

एक पक्षकी इच्छाके विरुद्ध समाज या व्यक्तिका भय दिखलाकर, नहीं कायम किया जा सकता। वास्तविक प्रेमका स्थान साम्यवादहीमें है, क्योंकि वहाँ प्रलोभन और बलात्कारकी गुञ्जाइश नहीं है।

इस प्रकार स्त्रियोंकी स्वतंत्रता साम्यवादहीमें सम्भव है, क्योंकि वह उन्हें सभी स्वतंत्रताओंकी जननी, आर्थिक स्वतंत्रता, प्रदान करता है। वह इस स्वतंत्रताके बाधक धर्म, ईश्वर, समाज किसीके डरकी पर्वा नहीं करता। वह विवाहको स्त्रियोंके लिए जीवन-निर्वाहका पेशा नहीं बनने देता। वह समझता है कि स्त्रियाँ पुरुषोंसे कम योग्यता नहीं रखतीं। वह "सच्ची माता" "स्त्रियोंका पवित्र कर्त्तव्य" "पतिव्रत-धर्म"—स्त्रियोंके लिए इन अत्यन्त घातक शब्दोंके फेरमें नहीं पड़ता।

---

(९)

साम्यवाद और मुसोलिनी तथा हिटलरके ढंग

यंत्रोंके कारण उपस्थित हुई मनुष्यकी वर्तमान समस्याओंपर हम पहिले विचार कर चुके हैं, और यह बतला चुके हैं, कि उनका हल साम्यवाद है। पूँजीवाद अबतक साम्यवादको एक काल्पनिक स्वप्न समझता था, इसलिए उसे वह हँसीकी बात समझता रहा, और उसने उसकी ओर गंभीरतासे ध्यान नहीं दिया। किन्तु जब उसने संसारकी अतिसम्पन्न षष्ठांश भूमिपर साम्यवादका प्रभुत्व जमते देखा, तो उसका रुख बदल गया, और आत्मरक्षाके लिए उसने नए रूप धारण किए। इटलीमें मुसोलिनीका फैसिज्म* और जर्मनीमें हिटलरका नात्सीज्म यह उसी पुराने पूँजीवादके नए रूप हैं। और समय बीतनेके साथ यह स्पष्ट होता जा रहा है, कि सभी देशोंमें साम्यवादके रोकनेके लिए पूँजीवादको इसी प्रकार कुछ अवश्य करना होगा। बात यह है कि पिछली एक शताब्दीमें पूँजीवादका नाम इतना बदनाम हो चुका है, कि पूँजीपति भी इस नामके व्यवहारमें हिचकिचाते हैं। इसीलिए मुसोलिनी कहता है—फैसिज्म पूँजीवादका दास नहीं है। हिटलरने तो अपने दलका नाम ही नात्सी या राष्ट्रीय समाजवादी रक्खा है। इसलिए इन वादोंके पक्षपाती आग्रहपूर्वक कहते हैं—"हमारे वादको आप पूँजीवाद नहीं कह सकते। वर्तमान कठिनाइयोंके हल करनेका दावा जैसे साम्यवाद करता है, वैसे ही हम भी एक हल पेश कर रहे हैं।"

अच्छा तो आइए, हम देखें यंत्र और पूँजीवादसे उत्पन्न हमारी कठिनाइयोंको ये कहाँ तक हल करते हैं। हम उन कठिनाइयोंको दो

* विस्तारके लिए देखिए "मानव समाज" पृष्ठ २८६-३०२

भागोंमे बाँटते हैं, एक तो देशके भीतर बेकारी—जन-वृद्धिकी समस्या, और दूसरी संसारके शिरपर हर वक्त लटकती भीषण युद्धकी तलवार। फैसिज़्म और नात्सीज़्म दोनों ही युद्धके परम भक्त हैं। वह इसे मनुष्य-जातिकी भलाईके लिए अत्यन्त आवश्यक और पवित्र साधन मानते हैं। मुसोलिनीका फैसिज़्म राष्ट्रीयतावादी है। उसके लिए इतालियन जाति और उसका स्वार्थ सर्वोपरि है। किसी समय मुसोलिनी जर्मनीके नात्सीज़्मका भारी प्रोत्साहक था; और नात्सीज़्मको फैसिज़्मका ही जर्मन संस्करण माना जाता था; किन्तु, जब नात्सीज़्म जर्मनीमें अधिकारारूढ़ हुआ, और एक जाति एवं एक भाषाके नाते आस्ट्रियाको हड़पना चाहा, तो मुसोलिनीके कान खड़े हो गए, और फिर इतालियन पत्र नात्सीज़्मके विरुद्ध लगे ज़हर उगलने। जब आस्ट्रियाके चान्सलर डोल्फ़सकी नात्सियोंने हत्या कर डाली, तब तो मुसोलिनीका विरोध और स्पष्ट हो गया। यह अनिवार्य भी था, क्योंकि फैसिज़्म और नात्सीज़्म राष्ट्रीयताको सर्वोपरि ही नहीं मानते, बल्कि दूसरी जातियोंके नाश या दासता द्वारा जैसे हो तैसे अपने राष्ट्रके विस्तार और प्रभुत्वको स्थापित करना चाहते हैं। फैसिज़्मके सामने इतलीकी जन-संख्याको खूब तेज़ीसे बढ़ाना, और काली जातियोंके ही नहीं, हो सके तो पास-पड़ोसकी युगो-स्लाव जैसी जातियोंके अस्तित्वको मिटाकर भी अपने राष्ट्रको फैलाना प्रधान लक्ष्य भी था। उनकी इच्छा तभी पूर्ण हो सकती थी, जब दुनियाकी सारी जातियाँ इतालियन जातिके लिए इस भूमण्डल को खाली करदें। और यह स्पष्ट ही है कि युद्धको अमर बना रखनेका यह सर्वोत्तम उपाय है। लेकिन युद्ध अब पहिले जैसी शौककी चीज़ नहीं है, अब तो साइंसने उसे इतना भयंकर बना दिया है कि उससे सारी जाति उच्छिन्न हो सकती है।

वैदेशिक नीति तथा विश्वमें अशांतिके संबंधमें नात्सीज़्मका रुख तो फैसिज़्मसे भी अधिक स्पष्ट है। हिटलरने अपनी पुस्तक "मेरा युद्ध"* में लिखा है—

* सरस्वती (अगस्त १९३४ ई०, पृष्ठ १५१-५२) से उद्धृत।

'सच बात तो यह है कि शांतिका आदर्श उसी दिन सबसे उत्तम रीतिसे कार्य रूपमें आ सकता है, जब मनुष्य संसारमें इस हद तक विजय प्राप्त करले, कि वह उसका एक मात्र स्वामी हो जाए"—(पृ० ३१५)

"राष्ट्रका आन्तरिक उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह चमकदार, तेज़ तलवार ढाल सके और इस बातका पूरा प्रबन्ध करे कि ये तलवार खूब और अच्छी तरहसे ढाली जाएँ।"—(पृ० ६८६)

"जो संधि या मित्रता युद्धके ख्यालसे नहीं की जाती, वह व्यर्थ और बेकार है।"—(पृ० ७४६)

नात्सीज़्म राष्ट्रीयतामें एक क़दम और भी आगे बढ़ा हुआ है। वहाँ तो इसके लिए शुद्ध आर्य—जिसके लिए माँ-बापकी कई पीढ़ियों तक अन्य जातिका रक्त-सम्मिश्रण न होना भी ज़रूरी है—होना अनिवार्य है। और उसकी परिभाषामें जर्मनी छोड़ संसारमें कहीं भी—यूरोपके देशोंमें भी—शुद्ध आर्य नहीं हैं। वह दूसरी जातियोंसे विवाह आदि संबन्ध ही विच्छिन्न नहीं करना चाहता, बल्कि उसने शताब्दियोंसे देशमें बसे हुए जर्मन यहूदियोंके—जिनकी कि वेष-भाषा सभी जर्मन है—भी देश निकालेकी व्यवस्था करके, अपने उक्त भावका परिचय दिया है। फैसिज़्म भी जर्मन जातिकी जनसंख्या बढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझता है। उसने विवाह करनेवालोंको सरकारी खज़ानेसे सैकड़ों रुपयोंके इनामका प्रलोभन दे रखा है। यह दोनों ही वाद और कुछ भी हो सकते हैं, किन्तु जहाँ तक विश्व-शांतिका संबंध है, ये उसके सबसे भारी शत्रु हैं।

अपने-अपने राष्ट्रके भीतर इन दोनों वादोंका क्या रूप है, अब ज़रा इसपर नज़र कीजिये। यह दोनों ही वाद शोषक और शोषित, लुटेरे और लुटनेवाले—अर्थात् पूँजीपति और श्रमजीवी इन दोनों वर्गोंको क़ायम रखना चाहते हैं। मुसोलिनी और हिटलरको सफल बनानेके लिए, साम्यवादके हौवेसे भयभीत पूँजीपतियोंने ही तो अपनी थैलियाँ खोली थीं। पूँजीपतियोंके धनसे पोषित, श्रमजीवियोंकी स्वतंत्र

संस्थाओंकी चिताकी राखपर स्थापित, फैसिज्म या नात्सीज्म पूँजीवाद छोड़ और दूसरा क्या हो सकता है ?

हम पहले कह चुके हैं कि पूँजीवादमें व्यक्तिगत नफ़ाके लिए यंत्रोंका उपयोग होता है, और राष्ट्रकी आवश्यकताओंके लिए साम्यवादमें उनका उपयोग होता है। नात्सीज्म शोषक और शोषित वर्गके भेदको मिटाना क्या वह तो उसे और दृढ़ करना चाहता है। साम्यवादकी ओर अधिक चढ़ाव देखकर ही तो १९३४ में हिटलरने अपने दो सौ सहायकोंका क़त्ल-आम किया। नात्सीज्मने स्त्रियोंके लिए विवाहको पेशा मानकर उनकी आर्थिक स्वतंत्रता और स्वतंत्र जीविकोपार्जनको ज़बर्दस्ती छीनकर बेकारीके सवालको हल करना चाहा है। उसने उद्घोषित किया है— स्त्रियोंका स्थान कारखानों और कार्यालयोंमें नहीं है, उनका स्थान घरमें है, गृहणी और माताके तौरपर। कितनी ही कठिनाइयों, जद्दोजहदके साथ पिछला एक शताब्दीमें स्त्रियोंने जो स्वत्व प्राप्त, किये उन्हें उसने अपने विजयके मदमें एक क़लमसे छीन लेना चाहा है।

हर प्रगति-विरोधी दलके लिए धर्म और ईश्वरकी दुहाई बड़ी लाभदायक चीज है, वही बात हम इन दोनों वादोंके बारेमें भी पाते हैं। हिटलरके शासनमें तो विद्यार्थी यह प्रार्थना करनेपर मज़बूर किये जाते हैं—

"हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! हमारे शस्त्रोंको विजय प्रदान कर। न्यायकर, जैसा कि तू हमेशासे करता आया है। हम लोगोंको आशीर्वाद दे, और हमें बता कि क्या हम स्वतंत्रताके अधिकारी हैं। हे ईश्वर! हमारे शस्त्रोंको विजय प्रदान कर।"

पोपके हुकुमनामोंकी तरह हिटलरने भी हुकुम निकालकर कार्लमार्क्सके ही नहीं, डार्विनके विकासवादको भी विश्वविद्यालयोंमें पढ़ना वर्जित कर दिया है।

इस प्रकार फैसिज्म और नात्सीज्म दोनों ही हैं देशके भीतर प्रगति-विरोधी, पीछे खींचनेवाले, स्त्रियों, श्रमजीवियों और पिछड़ी जातियोंकी

स्वतंत्रताके कट्टर शत्रु, और देशके बाहर युद्धकी अग्निको सदा उत्तेजित करनेवाले। वहाँ यंत्रोंके प्रयोगमें नफ़ेका सवाल और शोषक वर्ग ज्योंका त्यों रहनेसे बेकारीकी समस्या इनसे नहीं हल हो सकती।

आज इस दूसरे विश्वयुद्धके चार सालोंके तजुर्बेने फैसिज्म और नात्सीज्मके काले कारनामोंको खूब दिखला दिया है। इंग्लैण्डके स्वार्थान्ध पूँजीपतियोंने पहले इन्हें प्रोत्साहन दिया जिसमें ये साम्यवादी रूससे लड़ पड़ें मगर वे पहले इन्हींके ऊपर पड़े और २० सालकी सारी योजना और कुचक्रको भूलकर अन्त में पूँजीवादी देशोंमेंसे सबसे शक्तिशाली इंग्लैण्ड और अमेरिकाको अपनी जान बचानेके लिए रूसके सोवियत् संघके साथ होना पड़ा। इतली फासिस्त लकड़बग्घा खतम हो चुका है, हिटलरके पतनमें भी वर्षों नहीं मासोंकी देर है।

---

(१०)

साम्यवाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रता

साम्यवाद क्या चाहता है—(१) 'शोषक और शोषितके भेदको मिटाकर उपजके साधन (मशीन, भूमि, कच्चा माल) तथा उत्पादित वस्तुओंका स्वामी व्यक्तिको नहीं समाजको बनाना' (२) सभी व्यक्तियोंसे योग्यतानुसार काम करवाना' (३) जीवनके लिए ज़रूरी चीज़ों, यन्त्रोंके उपयोगसे मिलनेवाले अवकाश, और मानसिक विकासके अवसरको अपेक्षानुसार सभीको समानरूपसे बाँटना।

(१) और (२) को देखकर कितने ही लोग कह उठते हैं—

(क) आह! तब तो साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रताका महान् शत्रु है। उसके लिए व्यक्ति यंत्रके पुर्जेसे बढ़कर नहीं हैं; फलतः वह समाजके हाथकी कठपुतली-मात्र है।

(ख) मानसिक विकासकी योग्यता सबमें समान नहीं है, इस प्रकार एक लाठीसे हाँकनेसे तो विशेष प्रतिभाओंकी हत्या होगी, और मनुष्य-समाज उनकी सेवाओंसे वंचित रह जायेगा।

(ग) (३) से भी तो छोटे-बड़े सभी श्रमका पारितोषिक समान "सभी धान बाईस पंसेरी" "अँधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा" होनेपर कोई क्यों अधिक मूल्यवान् श्रम और योग्यताके लिए कोशिश करेगा? जंगलमें सभी दरख्त एकसे नहीं होते—कोई देवदारकी भाँति सौ-सौ फ़ीटके, कोई भोजपत्रकी तरह छोटे, और कोई तो घासोंकी तरह बहुत ही छोटे होते हैं। यदि प्रकृति सबको एक समान खाद्य दे, एक समान हवा-पानी-धूप दे, तो क्या देवदार उतने बढ़ सकते हैं। फिर तो गमलेमें रखे चीनी देवदारकी भाँति उन्हें दो

तीन फीट तकमें अपनी वृद्धि रोक देनी होगी। साम्यवादका सिद्धान्त भी ज़रूर प्रतिभा और योग्यताके लिए ऐसा ही घातक होगा।

(घ) यह संभव नहीं है, कि मनुष्य अचेतन वस्तुओंकी भाँति एक तंग दायरेमें बँधा रहे। चेतनाका मतलब ही है, स्वतंत्र विचार और कार्यका मार्ग ग्रहण करना। इसी स्वतंत्रतासे तो मनुष्य कोमल कला, सुन्दर साहित्य और विशाल विज्ञानके निर्माणमें सफल हुआ।

(ङ) साम्यवादियोंको मानव प्रकृतिका ज्ञान रत्ती भर भी नहीं है, नहीं तो वे ऐसा हवाई क़िला बाँधनेका कभी प्रयत्न न करते। मनुष्योंमें किन्हीं किन्हींको अगुआ बनने, हुकुम चलानेका नैसर्गिक योग्यता होती है, और दूसरे बहुसंख्यक वैसी योग्यतासे शून्य सिर्फ़ अनुगामी बनने, हुकुम बजा लानेकी योग्यता रखते हैं। साम्यवाद कोई ऐसा छू मंतर नहीं है, जो मनुष्यकी नैसर्गिक प्रवृत्तिको बदल दे।

(च) व्यक्तियोंकी भाँति भूमंडलकी जातियाँ भी नाना जलवायु, नाना मानसिक-शारीरिक विकासोंके कारण समान योग्यता नहीं रखतीं: उनमें कितनी ही शासित होने ही लायक़ हैं, और शासक बननेकी योग्यता हर्गिज़ नहीं रखतीं। बाघ और बकरीको एकसा बनाना क्या पागलपन नहीं है?

(छ) पूँजीपति शोषक नहीं हैं बल्कि चीज़ोंके उत्पादनमें वह भी वैसे ही श्रम करते हैं, जैसे कि श्रमिक। यदि श्रमिक हाथसे काम करते हैं, तो पूँजीपति संगठन, निगरानी और एकत्रीकरण-वितरण द्वारा वैसे ही महत्त्वपूर्ण कामको करते हैं।

(ज) संस्कृति और कलाके संरक्षण एवं विज्ञानके प्रचारमें क्या पूँजीपतियों और राजा-महाराजाओंका ही प्रधान हाथ नहीं रहा है! फिर उस वर्गका अस्तित्व मिटाना क्या समाजके लिए हानिकारक नहीं सिद्ध होगा!

इनके उत्तरमें साम्यवादी कहेगा—

(क) साम्यवाद पूँजीवादकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यक्तिगत

स्वतंत्रता देता है, यह बतलानेके पहले हमें देखना है, पूँजीवादी जिस व्यक्तिगत स्वतंत्रताका ढोल पीटते हैं, उसका रूप क्या है, और वह समाजमें कितनोंको नसीब है ? हम आठवें अध्यायमें बतला आए हैं, कि सारी स्वतंत्रताओंकी जननी है आर्थिक स्वतंत्रता। वह आर्थिक स्वतंत्रता कितनोंको प्राप्त है ? सिर्फ उन्हींको न, जिनके पास धन है, अर्थात् जो पूँजीपति हैं ? वह हज़ारों मजदूरोंको खरीद सकता है, हाँ दासकी तरह नहीं, बल्कि उससे भी बुरी तरहसे। दासके लिए हर हालतमें मालिक खाना-कपड़ा देनेके लिए मजबूर था, क्योंकि वैसा न करनेसे उसे उसमें लगी पूँजीके डूब जानेका डर था। किन्तु मज़दूरके लिए ? जबतक वह स्वस्थ है, काम कर सकता है; जबतक उससे काम लेनेमें नफ़ा है, तबतक उसके श्रमकी आधी-तिहाई मजदूरी देकर उससे काम लेना है। यदि बाजार मंदा हो और मजदूरी घाटेका सौदा है, तो बस कारखानेके दर्वाजेमें ताला। अब हजारों मज़दूर—जिनसे उनका घरबार छुड़ाया गया, जिनसे उनके हाथका हुनर छीन लिया गया—बलासे भूखों मरें। यदि मजदूर बीमार पड़ गया या बूढ़ा हो गया, तो भी स्वस्थ अवस्थाके एक-एक बूँद खूनको चूस लेनेवाला मालिक उस मज़दूरको बैरंग जवाब दे देनेके लिए बिल्कुल स्वतंत्र है। हज़ारों मज़दूर और उनका परिवार, यह कैसी व्यक्तिगत स्वतंत्रताका स्वर्गीय आनन्द लूट रहा है ! शायद आप उन्हें इसलिए स्वतंत्र कहते हैं, क्योंकि आँख बचाकर वह आत्महत्या तो करले सकते हैं !! मज़दूरोंको छोड़ और भी कितने ही व्यक्ति ढूँढ़नेपर ऐसी व्यक्तिगत स्वतंत्रताका उपभोग करते पाये जायेंगे।

क्या आप बतला सकते हैं, संसारमें कौनसे साधन या व्यक्ति पूँजीपतियोंके खरीदे नहीं हैं ? क्या समाचार-पत्र जनताके सामने स्वतंत्र विचार रखते हैं ? क्या इङ्गलैंड तथा दूसरे मुल्कोंके करोड़पति पत्र-मालिक पत्रकार-कलाको अपने हाथकी कठपुतली नहीं बनाये हुए हैं ? पत्रोंको किसी पहले समय चाहे कुछ थोड़ी बहुत स्वतंत्रता रही हो;

किन्तु आजकल तो वह पूँजीपतियोंके गुलाम हैं। भारतमें भी जिन पत्रोंने स्वतंत्रता और क्रान्तिकारी विचारोंका वकील बन अपनी नींव मजबूत की, उन्हें भी सफलता प्राप्त होते ही पैंतरा बदलते देर न हुई। और वह समय दूर नहीं, जब यहाँके पत्र भी दूसरे देशोंकी भाँति पूँजीपतियोंके हाथमें जा, उन्हींकी भलाईकी बात कहना अपना कर्तव्य समझेंगे। हमारे यहाँ अभी तक यदि पूँजीपतियोंका बहुत कम ध्यान इधर गया, उसका कारण था—लाभकी कम संभावना और पूँजीके डूबनेका डर। जिन समाचार पत्रोंकी अधिकतर आमदनी पूँजीपतियोंके विज्ञापनोंसे होती है, वे कहाँ तक अपनी स्वतंत्रता क़ायम रख सकते हैं। अब भारतीय पूँजीपति समाचारपत्रों और प्रेसपर अधिकार जमानेमें काफी दूर तक अग्रसर हो चुके हैं।

क्या लेखकों और कवियोंको पूँजीपतियोंने नहीं खरीद रखा है? दुनियामें ऐसोंकी संख्या बहुत कम है, जिन्होंने अपनी क़लम और प्रतिभाको न बेच खाया हो। जो कुछ इने-गिने स्वतंत्र कलमके धनी संसारमें पाये जाते हैं; वे उन सैकड़ों व्यक्तियोंके जीवन भरके स्वतंत्रताके संग्रामके अवशेष मात्र हैं जो असफल रह, गुमनाम ही संसारसे चल बसे।

और राजनीतिज्ञ? राजनीति तो और भी पूँजीपतियोंकी दासी है। संसारके राजनीतिज्ञोंकी ओर नजर दौड़ाइए, आपको यह स्पष्ट मालूम हो जायेगा। सभी देशोंके मंत्रिमण्डलमें कारखानेवालों, बैंकों, प्रेसके मालिकोंकी ही तो भरमार है। राजनीति तो शक्तिका स्रोत है, इसलिए उसे पूरी तौरपर हथियाना पूँजीपति लोग अत्यन्त आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं। पूँजीवादी देशोंकी पार्लियामेंटोंके चुनाव तो सिर्फ़ रुपयोंके ही भरोसे लड़े जाते हैं। जहाँपर सम्मति-दाताओंको रुपयोंके रूपमें रिश्वत नहीं दी जाती—और ऐसे स्थान बहुत कम हैं—वहाँ भी जबान और प्रेसको ख़रीद लिया जाता है; यातायात के साधनों—मोटरों हवाई जहाजों, रेलोंपर रुपया पानीकी तरह बहाया जाता है। क्या जिसके पास रुपया नहीं है, सिर्फ़ अपनी योग्यता, त्याग और सेवाके भरोसे चुनावमें

कभी सफलता प्राप्त कर सकता है ? गाँवका अपढ़ अजान आदमी भी जानता है, कि चाँदीके टुकड़ोंकी वर्षा किये बिना कोई चुनावमें सफल नहीं हो सकता। "प्रजातंत्रीय" संस्थाओंके लिए यह सम्मतिदान ही तो व्यक्तिगत स्वतंत्रताका उदाहरण बतलाया जाता है ! जबतक एक आदमीके हाथमें अपार धनराशि है, और हजारों ग़रीब, आश्रयहीन हैं, तबतक सम्मतिकी खरीद-बेंच हुए बिना रह ही नहीं सकती।

क्या पण्डित, मौलवी, पादरी व्यक्तिगत स्वतंत्रताके मालिक हैं ? उनका तो अस्तित्व ही पूँजीपतियोंकी कृपापर है। उनके बड़े-बड़े मंदिर, मकान, लम्बी धोतियाँ और चोगे सभी पूँजीपतियोंकी देन हैं। सबसे कम जहाँ स्वतन्त्रताकी आशा हो सकती है, वह हैं यही धर्मके ठेकेदार और उनकी संस्थाएँ।

देशी राजाओंकी प्रजाके लिए तो व्यक्तिगत स्वतंत्रताका शब्द भी प्रयुक्त नहीं हो सकता। उनका तो जानमाल, इज्जत-पानी सभी "अन्नदाता" की मुट्ठीमें है।

आप तेज मशाल लेकर संसारके कोने-कोनेमें ढूँढ़ आइए, आपको व्यक्तिगत स्वतंत्रताका किसी पूँजीवादी देशमें पता न मिलेगा, यह एक व्यर्थका शब्द मालूम होगा। अथवा यदि वह कहीं सार्थक होगी, तो वह मुट्ठीभर धनिकोंके लिए। वह इन लम्बे-चौड़े शब्दोंसे लोगोंको बहकाना डराना चाहते हैं, और भोले-भाले आदमी "कौआ कान लेजा रहा है"—कहनेपर कानको बिना टटोले ही कौएके पीछे दौड़ने लगते हैं। उन्हें समझना चाहिए, जब दुनियाकी सबसे बड़ी शक्ति धन, सिर्फ़ चंद आदमियोंके हाथकी चीज है, और वह उससे छोटे-बड़े सभी तरहके आदमियोंको खरीद सकते हैं, तो खरीदा आदमी कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता है ?

हाँ, तो मालूम हुआ, आपकी "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" धोखेकी टट्टी है। साम्यवाद चूँकि धनको व्यक्तिके हाथमें नहीं रहने देता, और आर्थिक दृष्टिसे सबको एक तलपर ला देता है, इसलिए वह अलबत्ता व्यक्तिगत स्वतंत्रताका भारी सहायक है।

(ख) साम्यवाद सभी प्रकारकी योग्यताओंको विकसित और सफल करनेका पूरा अवसर देता है। आपका बतलाया दोष तो पूँजीवादमें ही है, जिसके यहाँ दरिद्र पिताके प्रतिभाशाली बालकको ऊसरके बीजकी भाँति अंकुरित भी होने नहीं दिया जाता।

(ग) साम्यवाद सभी प्रकारके श्रमोंको समाजके लिए एक-साँ आवश्यक समझता है। यह योग्यता, प्रतिभा और समाजके लिए की गई बड़ी सेवाओंका मूल्य धन-द्वारा नहीं करना चाहता। प्रतिभाएँ स्वयं इसे चिरकालसे तुच्छ समझती आई हैं। हाँ, वह अधिक श्रद्धा-सम्मान-द्वारा उन्हें पुरस्कृत करनेका विरोधी नहीं है। ऐसी प्रतिभाएँ तो अपने कार्यकी सफलता और सुखमय परिणामसे ही अपनेको कृतकृत्य समझती हैं। दुनियाके बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंके आविष्कारोंसे तो सिर्फ़ पूँजीपतियोंने फ़ायदा उठाया है। यह होते हुए भी विज्ञानकी खोजमें प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणोंकी आहुति देनेवाले किस पारितोषिककी इच्छासे वैसा करते हैं? वस्तुतः प्रथम श्रेणीकी प्रतिभाएँ बिना किसी पारितोषिकके लोभके ही मनुष्य जातिकी सेवाके लिए तैयार रहेंगी। द्वितीय और तृतीय श्रेणी की प्रतिभाओंको काममें सहायता और श्रद्धा-सम्मान द्वारा प्रोत्साहित किया जा सकता है।

(घ) साम्यवाद मनुष्यको अचेतन वस्तुओंकी भाँति तंग दायरेमें बंद नहीं कर रखना चाहता, बल्कि पूँजीवादके जेलखानेमें जन्मसे मरणतक बंद रक्खे जानेवाले असंख्य मनुष्योंकी उनकी आर्थिक बेड़ी काटकर मुक्त करना चाहता है। कोल्हूके बैलकी भाँति जीवनभर पेटके पीछे घूमनेवालोंको भी 'कोमल कला, सुन्दर साहित्य, विज्ञानके निर्माणके लिए' वह हज़ारगुना अधिक अवसर देता है।

(ङ) यदि अगुआपन और अनुगामीपन मनुष्यमें माँके दूधसे आता है, तो साम्यवादी उसके पीछे लाठी लेकर कहाँ फिरते हैं? वे तो सिर्फ़ यही चाहते हैं, कि वह अगुआपन व्यक्तिकी योग्यता और प्रतिभाके बलपर स्थापित हो। रुपयेकी रिश्वत देकर अगुआपन क़ायम करनेहीके

तो वह विरुद्ध है ? रुपयेसे खरीदे अगुआपनको आप भी स्वाभाविक नहीं कहेंगे।

(च) भूमंडलकी जातियोंमें जन्मसिद्ध शासक और शासितभेद करना तो वैसा ही है, जैसे कोई लुटेरा कहे—"न्यायाधीश बड़ा मूर्ख और मनुष्यके स्वभावसे बिल्कुल अनभिज्ञ आदमी है। उसे मालूम होना चाहिए, कि कुछ मनुष्य जन्मतः लूटनेके लिए बनाये गये हैं, और कुछ लुटनेके लिए। बाघ-बकरोंकी भाँति दोनों प्रकारके व्यक्तियोंको एक जैसा बनाना बिलकुल अनुचित है।" जैसे लुटेरेकी यह बात है, वैसे ही साम्राज्यवादी पूँजीपतियोंका उक्त कथन भी उनकी स्वार्थ-परायणता-का नमूना है, सत्यका नहीं। जिन युक्तियोंके आधारपर वे संसारकी जातियोंको इन दो भागोंमें बाँटते हैं, उनके ही बल पर तो उनकी अपनी जातिको भी दो हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है। और दरअसल पूँजीवादियोंने उन्हें वैसे ही बाँट भी रखा है।

(छ) बड़े-बड़े कारखानोंके हजारों भागीदार जो कारखानेके बारेमें सिर्फ इतना ही जानते हैं, कि उन्हें इस वर्ष १५ प्रति सैकड़ा मुनाफ़ा मिला है, क्या श्रमिक कहे जायेंगे ? अपनी जमींदारी-तालुक़ेदारीसे जिनको गुलछर्रे उड़ानेके लिए रुपये मिल जाने भरका संबंध है, क्या वे श्रमिक हैं ? पराई कमाई, पराये परिश्रमको हड़पनेवाले व्यक्ति शोषक नहीं तो क्या हैं ? जो पूँजीपति अपने कारबारकी सीधी देखभाल करते हैं, उन्हें भी अपने मजदूरोंकी अपेक्षा हजारगुना अधिक पारिश्रमिक लेनेका क्या हक़ है ? और जबतक वह वैसा करेंगे तबतक वे शोषक-हड़पक हैं ही।

(ज) भूतकालमें कला, विज्ञानकी सरक्षकता, धनिकोंको हमेशाके लिए पट्टा नहीं दिला देती, कि वह हमेशा तक लोगोंको लूटा करें। यदि उन्होंने समाजकी कोई वैसी भलाई—जो स्वार्थशून्य तो कभी नहीं रही—की, तो उसका कई गुना अधिक फ़ायदा भी वे उठा चुके। अब इस वर्गके न रहनेपर कला और विज्ञानकी प्रगतिमें कोई हानि नहीं

होगी, क्योंकि उसकेलिए साम्यवाद राष्ट्रके अपार साधन, अपरिमित अवकाश, और असंख्य प्रतिभाओंको लगा देनेके लिए तैयार है।

साम्यवाद स्वतंत्रता और स्वैरितामें भेद करता है। समाजके सभी व्यक्तियोंकी स्वतंत्रताका ख्याल जिसमें रखा जाये वही स्वतंत्रता है। इस प्रकार स्वतंत्रताकी भी सीमा और मर्यादा है। कर्त्तव्यका बन्धन भी एक बन्धन है सही, तब भी उसके अनुसरणको हम स्वतंत्रताका बाधक नहीं कह सकते। यदि वह परतंत्रता भी है, तो उसे शिरोधार्य करना ही होगा, क्योंकि उसके बिना समाजका कल्याण नहीं हो सकता। समाजका कल्याण क्या है? यही उसके सभी व्यक्तियोंका समानरूपेण कल्याण। समाज कहनेसे वह कल्याण व्यक्तियोंसे बाहरका नहीं हो जाता। सब व्यक्तियोंकी सम्मिलित भलाई बुराई ही समाजके नामसे कही जाती है। देशके सैकड़ों प्रकारके क़ानूनोंको तो आप स्वतंत्रताका बाधक नहीं समझते होंगे? साम्यवादमें तो उन क़ानूनोंमेंसे तीन चौथाईकी आवश्यकता ही न होगी। क्योंकि उनमें अधिकांश तो व्यक्तिगत संपत्ति, उसके टैक्स और रक्षाके सम्बन्धमें बने हैं। जो सिद्धान्त तीन चौथाई क़ानूनोंको अनावश्यक करदे, वह अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता देता है, या वह जो कि चौगुनेकी आवश्यकता अनिवार्य समझता है?

पूँजीपतियों और सत्ताधारियोंकी जिस स्वतंत्रताका आपको ख्याल है, वह स्वतंत्रता नहीं स्वैरिता है। उसकी नींव असंख्य व्यक्तियोंकी स्वतंत्रताके सत्यानाशपर रखी गई है। जैसा सम्बन्ध सारी घड़ीके साथ उसके पुर्ज़ेका है, वैसा ही संबन्ध है व्यक्तिका समाजके साथ। व्यक्तिके लिए स्वतंत्रता चाहिए, किन्तु वह स्वतंत्रता दूसरे व्यक्तियोंकी स्वतंत्रतामें बाधा पहुँचानेवाली न होनी चाहिए।

सब तरह देखनेसे मालूम होगा, कि जिनकी स्वतंत्रता बहु-संख्यक मनुष्योंकी स्वतंत्रताकी बाधक है, उन्हें छोड़कर, बाक़ी सभी लोगोंके लिए साम्यवाद बहुत अधिक स्वतंत्रता देता है।

(११)

साम्यवादमें यंत्रोंसे प्राप्त अवकाशका उपयोग

वैज्ञानिक साम्यवाद जीवनकी सभी सामग्रियोंके पैदा करनेमें यंत्रोंका पूरे तौरसे उपयोग करनेका पक्षपाती है। वह यह भी चाहता है कि यंत्रोंमें दिन-पर-दिन अधिकाधिक सुधार होता जाए, जिसका मतलब है, कि चीज़ोंके पैदा करनेमें कम-से-कम समय लगे। हो सकता है ऐसा समय आए जब संसारके सभी काम करने लायक मनुष्योंका एक घण्टेका श्रम ही उनके जीवनकी सभी उपयोगी चीज़ें—खाना, कपड़ा, मकान, बाग़, सड़क, विद्यालय, नाट्य-मंच आदिके लिए पर्याप्त हो। वैसी दशामें आठ घण्टा सोनेके लिए भी रख लेनेपर, बाक़ी पन्द्रह घण्टोंमें आदमी क्या करेगा? क्या काम न होनेपर बेकार आदमी तरह-तरहके झगड़े फ़सादमें नहीं लग जायेगा? क्या उससे भविष्यकी शांति और सुखका सपना झूठा न हो जाएगा?

हमें ऐसे प्रश्न उठानेवालोंपर आश्चर्य होता है। जो लोग ख़ुद उपदेश किया करते थे—मनुष्यका जीवन पेट पालनेमें लगे रहनेके लिए नहीं है, वह तो पशु भी कर लेते हैं। जिनके स्वर्गकी कल्पना ही है—कि वहाँ आदमीको सब माँग सुलभ है, और काम बिलकुल नहीं करना पड़ता, वही लोग अब इस प्रकारकी दलीलें उठाते हैं। सम्भव है, उनका यह ख़्याल हो कि साम्यवादी तो धार्मिक पूजा-पाठको भी नहीं मानते, फिर उनके पास बेकारोंके समयको काटनेका क्या उपाय हो सकता है? नहीं जनाब! धार्मिक पूजा-पाठको न मानते हुए भी साम्यवादी बहुतसे काम बता सकते हैं। ये मनुष्यके करने लायक कामोंको दो हिस्सोंमें बाँटते हैं—एक वह जो सबके लिए अनिवार्य हैं, और दूसरे वह जिनके करनेमें व्यक्तिकी स्वतंत्रता है। व्यक्ति और समाजके जीवन धारणके लिए जो चीज़ें अत्यन्त आवश्यक हैं, उनके पैदा करनेका काम मानसिक और शारीरिक योग्यताके अनुसार हर एक आदमीको करना

अनिवार्य है। यंत्रोंके उपयोगके द्वारा कामके समयको घटाकर एक घण्टा कर देनेका मतलब है, अनिवार्य कार्यके लिए सिर्फ एक घण्टेका रह जाना। व्यक्तिगत स्वतंत्रताके प्रेमियोंको तो इससे खुश होना चाहिए। बाक़ी पन्द्रह घण्टोंके कामके लिए आपको चिंतित न होना चाहिए, उस समय अपनी-अपनी रुचिके अनुसार मनुष्य साहित्य, संगीत और कलाका निर्माण कर सकता है, या उसका रसास्वादन कर सकता है; स्वास्थ्य और साहसके खेल और यात्राएँ कर सकता है। आकाश, भूमि और समुद्रकी यात्राएँ क्या मनुष्यके लिए मनोरंजक और ज्ञानवर्धक न होंगी? मनुष्य, पशु, पक्षी तथा दूसरे छोटे-छोटे जन्तुओंके मनोविज्ञानका अनुसंधान या अध्ययन कर सकता है; दर्शन और विज्ञान-सम्बन्धी खोजोंमें लग सकता है। चिकित्सा-संबंधी न हल हुई कितनी ही समस्याओंका हल कर सकता है। यात्राएँ, क्रीड़ा और नाट्य ऐसी चीज़ें हैं, जिनमें आदमी जितना चाहे उतना समय दे सकता। फिर क्या आप विश्वास दिलाते हैं कि उस समय प्राकृतिक उपद्रव भूकम्प, अवर्षण, अतिवर्षण आदि न होंगे? उनके होनेपर पुनर्निर्माणके लिए आदमीको सारी शक्तिके साथ बराबर तैयार रहना होगा। सूचना पाते ही एक जगहके आदमियोंको दूसरी जगह सहायताके लिए दौड़ना होगा क्योंकि उस समय वस्तुतः सारा मानव-समाज ही एक परिवार हो गया रहेगा।

ज़रा ख़याल तो कीजिए आजकल जब अधिकांश मनुष्य हर वक्त कामकी चक्कीमें पिसे रहकर कला और साहित्यके सृजन या अवलोकनके आनन्दके लिए समय नहीं निकाल सकते, और जिन थोड़े लोगोंको वैसा अवसर भी मिलता है, वे भी धनी लोगोंको सन्तुष्ट करनेके लिए उसका ऐसी चीज़ोंके निर्माणमें उपयोग करते हैं, जिनसे दूसरे मनुष्योंके शरीर और मन विकृत होते हैं। अवकाश और प्रतिभाके उपयोगका द्वार मनुष्य मात्रके लिए खुल जानेपर उस समय मनुष्य पृथ्वीके कोने-कोनेको सुन्दर बना देगा। जो कलाका आनन्द आजकल इने गिने

लोगोंके भाग्यकी चीज़ है, वह उस समय सार्वजनिक हो जायेगा। मनुष्यकी विद्या और संस्कृतिका तल उस समय आजसे बहुत ऊँचा हो जायेगा। आजकल मनुष्यका कितना समय बेकार जा रहा है ? प्रतिभाएँ सोई पड़ी रहती हैं ? इन सारे बेकार जानेवाले श्रम, समय और प्रतिभाओंका जब मनुष्य स्वतंत्रतापूर्वक अच्छी तरह उपयोग करेगा, तो संसार उस झूठे स्वर्गसे कहीं अधिक सुन्दर, सुखमय और तृप्तिकर होगा, जिसकी कल्पनाको सामने रखकर धर्मके पुरोहित अपने भोले-भाले अनुयायियोंको फँसाते हैं।

आप हमारे इस कथनको कल्पनाके संसारमें विचरना कहेंगे; किन्तु सच बताइए क्या आपका प्रश्न भी वैसा ही नहीं है ?

साम्यवादी झंडेके नीचे आकर राष्ट्रकी सोती हुई शक्तियाँ जागृत होकर क्या क्या कर सकती हैं, वह आपको संसारके साम्यवादी देशकी ओर एक दृष्टि डालनेसे मालूम हो जायेगा। अब भी उसके भीतरी विरोधी नष्ट नहीं हो गये हैं, और बाहर तो उसके विरुद्ध जबर्दस्त षड्यन्त्रोंका बाज़ार गर्म है। परन्तु इतना होनेपर भी यही नहीं है कि किसी समय उद्योग धंधेमें वह अत्यन्त पिछड़ा देश आज मिट्टीके तेल और लोहेके उत्पादनमें ही सर्वप्रथम है; बिजलीके उत्पादनमें भी शीघ्र ही वह वैसा ही होनेवाला है, बल्कि विज्ञानकी खोजोंमें भी उसने बहुत तरक्की की है। उसे मनोविज्ञानकी खोजमें पावलोवकी खोजोंका श्रेय प्राप्त है। पावलोव बर्ट्रंड रसलके मतसे संसारके सात प्रतिभास्तम्भोंमेंसे एक है। चिकित्सा-विज्ञानमें हृदयकी गतिके बन्द होनेसे मरे हुए लोगों-को पुनर्जीवित करनेका आविष्कार भी वहाँ हो चुका है। दूसरे विज्ञानोंके क्षेत्रोंमें भी वह देश आगे बढ़ता जा रहा है। साहित्य और नाट्यकलामें तो आज संसारमें उसका प्रथम स्थान है। जिस प्रकार वहाँ हर एक बच्चेकी शिक्षा अनिवार्य ही नहीं है, बल्कि मानसिक झुकाव देखकर शिक्षा देनेका उत्तम प्रबन्ध है; और जैसे प्रतिभाओंके लिए देशके कोने-कोनेसे खोजकर विशेष शिक्षाका प्रबन्ध किया जा रहा है, उससे

यही आशा रखनी चाहिए कि कुछ ही समयमें विज्ञान और उसके आविष्कारोंकी सहायतासे साम्यवादी देश बहुत आगे बढ़ जायेगा।

इस प्रकार यंत्रोंके अत्यधिक उपयोगसे प्राप्त होनेवाला अवकाश कोई ऐसी समस्या नहीं है, जिससे भयतीत हो हम अपने ध्येयको छोड़ बैठें। इतनी बात भी हमने उठनेवाली काल्पनिक शंकाओंके समाधानके लिए कही। साम्यवाद परिस्थितिके मुताबिक बुद्धिके स्वतंत्रतापूर्वक उपयोगका अब भी पक्षपाती है, और आगे भी रहेगा। लाखों वर्षों बाद आनेवाली समस्याओंका क्या रूप होगा यह तो हमें मालूम नहीं है; इसलिए अभीसे उनपर माथापच्ची करनेकी हमें क्या जरूरत? हाँ, बुद्धिस्वातंत्र्यके जिस संसारकी वह इस वक्त नींव डाल रहा है, उसके बलपर अपने विशाल ज्ञान और चिरकालके तजर्बोंके भरोसे उस वक्तके लोग अपने आप उनके हल सोच लेंगे।

---

(१२)

साम्यवादका भविष्य और उसके शत्रु-मित्र

हम मनुष्य-जातिकी विकट समस्याओंपर काफी लिख चुके और यह भी दिखला चुके कि उनसे बचनेका एकमात्र उपाय साम्यवाद है। सवाल होता है—क्या साम्यवाद संसारमें अवश्य ही होकर रहेगा? यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर एकदम 'हाँ' या 'नहीं' में नहीं दिया जा सकता। (१) संसारके इतने भारी जन-समुदायका बेकार हो भूखे मरना, (२) हर दसवें बारहवें वर्ष बाजारका मन्दा पड़ जाना, और उसके कारण एक ओर लोगोंका भूखे मरना और दूसरी ओर लाखों मन खाद्य और दूसरे पदार्थोंमें आग लगाया जाना, (३) संसारके ऊपर सदा भयंकर आधुनिक प्रकारके युद्धोंकी नङ्गी तलवारका लटकते रहना, (४) पैतृक रोगों और मानसिक दुर्बलताओंको हटा बेहतर मानव-सन्तान पैदा करनेके रास्तेमें पग-पगपर बाधाओंका होना, (५) धनी-गरीब सबको ही

भविष्यकी अनिश्चित अवस्थासे चिन्तित रहना—यह और दूसरी भी ऐसी कितनी बातें हैं, जिनको साम्यवाद ही हल कर सकता है। शताब्दियोंसे सुरक्षित अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए यद्यपि बलवान् शक्तियाँ भी इसका विरोध कर रही हैं, तो भी उपर्युक्त समस्याएं मनगढ़न्त नहीं हैं। उनकी तीव्र वेदनाएँ हर एक पुरुषको समय-समयपर बिच्छूके डंककी भाँति चुभती रहती हैं, इसलिए मनुष्यको साम्यवादका स्मरण बारबार आना अनिवार्य ठहरा और इसीसे मालूम होता है कि साम्यवाद संसारमें फैलकर रहेगा।

तो भी पूँजीपतियोंके पास धनकी अपार शक्ति है, विद्या-बुद्धि है, धर्म और ईश्वरका जाल है। वे चुपचाप अपने स्वार्थोंसे दस्त-बरदार न होंगे। वे इसका प्राणपनसे विरोध करेंगे—बुद्धिसे भी और शस्त्रसे भी। परन्तु उनका मतलब तभी पूरा हो सकता है, यदि वह (१) कुछ देशोंको हमेशाके लिए गुलाम बना सकें, और इस प्रकार एक स्थायी बाज़ार उनके हाथमें हो; (२) यदि परतंत्र देशोंके लिए पूँजीपति देशोंमें ऐसा समझौता हो जाय कि वे उनके लिए परस्पर युद्ध न करें, जिससे कि परतंत्र देशको कभी स्वतंत्र होनेका मौक़ा न मिले; और न उन्हें ही वैज्ञानिक युद्धके कारण अपना सर्वनाश कर लेना पड़े; (३) यदि जनवृद्धि और यन्त्रके कारण बेकार होनेवाले लोगोंको वे युद्ध या कत्ले-आम द्वारा नष्ट कर सकें; (४) यदि मनुष्यकी ज्ञान-पिपासा और मनन अन्वेषणकी प्रवृत्ति भूतकी बात हो जाय, और स्वार्थी प्रभुओंके शासनको अन्त करनेवाले वैज्ञानिक और विचारक फिर न उत्पन्न हो सकें; (५) यदि मनुष्य जातिमें आदर्शके लिए प्राणोंकी बाजी लगानेवाले सत्पुरुषोंका पैदा होना हमेशाके लिए बन्द हो जाय; तो हम कह सकते हैं कि साम्यवाद संसारमें नहीं फैल सकेगा।

हमने पक्ष और विपक्ष दोनों तरहके कारणोंको रख दिया। उनके देखनेसे मालूम होगा कि साम्यवादके विरोधी कारण, पक्षवालोंसे कहीं अधिक असम्भव हैं, और इसलिए साम्यवाद जल्दी या देरसे ज़रूर

सफल होगा। पूँजीवादियोंका सिद्धान्त आदर्शवाद नहीं, स्वार्थका वाद है; इसलिए वह यह प्रयत्न तो करेंगे कि साम्यवाद कभी आए ही नहीं; किन्तु वे इसपर भी सन्तोष करेंगे, यदि वह उनकी ज़िन्दगी भरके लिए टल जाए। दुनियाके उथल-पुथलमें वे देखते हैं कि कितने ही धनियोंके पुत्रोंको मज़दूरी करनी पड़ती है, तो भी वे अपनी सन्तानोंकी परवा नहीं करते। उनके लिए अपनी ज़िन्दगीका सुखसे कट जाना प्रथम ध्येय है। किन्तु साम्यवादी अपने सामने एक आदर्श रखते हैं, और ऐसा आदर्श जिससे वे समझते हैं कि सिर्फ़ एक देशको ही नहीं, सारी मनुष्य जातिको चिरस्थायी शान्ति प्राप्त होगी। इसलिए यद्यपि देर होनेपर भी वे अपने कामको छोड़ नहीं सकते, तो भी उस देरका होना न होना अधिकतर उनके ही उद्योग या सुस्तीपर निर्भर है। बिना प्रयत्न, बिना स्वार्थ-त्याग, बिना एकताके साम्यवाद अपने आप संसारमें फैल जायेगा, ऐसी आशा रखना साम्यवादके कर्मण्यतापूर्ण सिद्धांतके बिलकुल विरुद्ध है।

साम्यवादकी सफलता चाहनेवालोंको यह भी जानना चाहिए कि साम्यवादके कौन शत्रु और कौन सहायक हैं। औरोंकी भाँति साम्यवादके भी दो प्रकारके शत्रु हैं। एक वे जो जान-बूझकर अपने स्वार्थके लिए इनका विरोध करते हैं, दूसरे वे जो भ्रमपूर्ण धारणा और अज्ञानके कारण शत्रुवत् आचरण करते हैं। पहली श्रेणीमें (१) पूँजीपति सर्वप्रथम हैं; (२) फिर उनके क्रीतदास नौकर-चाकरों और धर्मके पुरोहितोंका नम्बर आता है। (३) पूँजीपतियोंके सहायक धर्म और ईश्वर साम्यवादके विरोधके लिए भयङ्कर अस्त्र हैं। (४) बूढ़े और नए विचारोंपर सोच-विचार करनेकी शक्ति खो चुके दिमाग़ भी उसी तरहके विरोधी हैं।

दूसरी श्रेणीके शत्रुओंमें (१) अंधी भक्ति और श्रद्धा-तपस्याके प्रचारकोंका नंबर पहले आता है, क्योंकि वे मनुष्यकी स्वतंत्र विचार करनेकी शक्तिको बेकार कर देते हैं। (२) अन्धी राष्ट्रीयता भी साम्यवादके आन्तरिक शत्रुओंमें है, क्योंकि वह संसारके सभी श्रमजीवियोंकी एकतामें

बाधा ही नहीं डालती बल्कि उन्हें आपसमें शत्रुता और बन्धु-हत्याके लिए तैयार करती है। राष्ट्रीयताका समर्थक होते हुए भी समाजवाद अन्तर्राष्ट्रीय है। स्वदेशी समाजवादका नारा सिर्फ दूसरोंकी आँखोंमें धूल झोंकने तथा अपनी नेतागिरीको कायम रखनेके लिए है। (३) पुरानी बातोंका बेसुरा राग अलापना भविष्यकी दिन-पर-दिन होनेवाली सार्वत्रिक प्रगतिको भूतमें खोजना या भूतकी अपेक्षा उसे निकृष्ट समझना, बात-बातमें पुरानी पुस्तकों और बातोंकी दुहाई देना—यह मानसिक दासता भी साम्यवादके सूक्ष्म किन्तु बलिष्ठ शत्रुओंमें है।

शत्रुओंके बारेमें कहकर यहाँ साम्यवादके असली संस्थापकों और सहायकोंके विषयमें भी कह देना है। साम्यवाद शब्दमें इस समय बहुत आकर्षण है, इसलिए कच्चे-पक्के सभी प्रकारके आदमी इस गिरोहमें आना चाहते हैं। साम्यवादी आन्दोलनके पिछले सौ वर्षके इतिहास को देखनेसे मालूम होगा, कि उसको शत्रुओंकी अपेक्षा कच्चे अनुयायियोंसे बहुत ज्यादा हानि पहुँची है। गत युद्धके बाद तो ऐसे लोगोंके कारण कुछ देशोंमें साम्यवादकी निश्चित सफलता पीढ़ियोंके लिए पाछे हट गयी। इसलिए हमें साम्यवाद के कच्चे और पक्के अनुयायियोंको पहिचानना चाहिए।

साम्यवादके शब्दसे आकृष्ट होकर आनेवाले लोगोंमें धनियोंकी कितनी ही तरुण सन्तानें भी हैं, जिन्हें जवानीकी निष्पक्ष विचार-शक्ति दूसरे बंधनोंके ढीला होनेसे उधर खींच लाती है। तो भी उस वक्त उनका निश्चय कच्चा होता है, और उनमेंसे कितने तो (१) फैशनके लिए उधर झुकते हैं, (२) कुछके मनमें झटपट नेता बननेका लोभ भी प्रेरक होता है, (३) कुछके लिए यह बौद्धिक व्यायामका काम देता है, और इस प्रकार असल बात उनके मनके भीतर तक पैठने नहीं पाती। ऐसे लोग क्रियात्मक तौरसे साम्यवादमें उतना योग नहीं दे सकते, क्योंकि (४) अपने धनी संबंधियों और बन्धुओंका ख्याल या मुलाहिजा उनके सरगर्मीसे काम करनेमें बाधक होता है। (५)

अपनी भारी आर्थिक हानि उन्हें बराबर आगे बढ़नेसे रोकती है। (६) शब्दोंके पीछे झगड़नेकी उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, क्योंकि जिन्दगीकी असली कठिनाइयोंका उन्हें बहुत कम अनुभव होता है। (७) स्वयं वैसा मौका न पड़नेसे गरीबोंके दुःखका खयाल उन्हें कभी ही कभी और वह भी थोड़े समयके लिए आता है। (८) उनमेंसे बहुतोंको साम्यवाद ऊपर चढ़नेके लिए सीढ़ीका काम देता है, और जैसे ही उनका मतलब पूरा हुआ, कि वह उसे धता बताकर अलग हो जाते हैं।

धनिकोंकी तरुण सन्तानों जैसा तो नहीं, तो भी बुद्धिजीवी तरुण साम्यवादके पक्के सहायक होनेकी योग्यता नहीं रखते; क्योंकि साधारण श्रेणीमें पैदा होनेपर भी उन्हें बड़ा बननेका पूरा अवसर रहता है, और बड़ा बन जानेपर वे आसानीसे अपने पुराने आदर्श और सहकर्मियोंके साथ विश्वासघात या कृतघ्नताका बर्ताव करनेसे नहीं चूक सकते।

साम्यवादके वास्तविक संस्थापक और समर्थक स्वयं श्रमजीवी—मजदूर और किसान ही हो सकते हैं; क्योंकि (१) उनकी हीन दशा असह्य ग़रीबी उनके भीतर बार-बार उस पीड़ाको जगाती रहेगी; (२) वे इस युद्धमें निर्भयतापूर्वक पड़ सकते हैं, क्योंकि उनके पास हारनेके लिए कुछ है ही नहीं। जीतनेपर उन्हें हमेशाकी स्वतन्त्रता मिलेगी, और हारनेपर भी तो आगे युद्ध जारी करनेका हमेशाके लिए अवसर उनके हाथसे छिन नहीं जाता। (३) संख्या या कार्यके खयालसे भी संसारके श्रमजीवी एक विशाल शक्ति हैं, जिसका बोध होते ही वे पीछे हटनेका नाम नहीं ले सकते। (४) धनी पूँजीपति श्रमिकोंके बनाए हैं, और अपनी शक्ति और समताका उपयोगकर वे उन्हें बिगाड़ सकते हैं।

ऐसा होनेपर भी यह मतलब नहीं कि कच्चे अनुयायियोंका बहिष्कार करना चाहिए। बुद्धिजीवियोंके संबंधमें उपर्युक्त खयाल मनमें

रखना ही उनकी हानिकारकताको हटानेके लिए काफी है। बुद्धिजीवी एक समय सच्चे भावके साथ आते हैं, और कितने ही हमेशाके लिए रह भी जाते हैं। साथ ही साम्यवादके लिए उनकी सेवाएँ भी अनमोल हैं। तो भी समय-समयपर किए हुए विश्वासघातोंको देखते हुए साम्यवादी आन्दोलनका असली आधार बुद्धिजीवियोंको न बनाना ही अच्छा है। इसका असली आधार तो श्रमिकवर्ग ही हो सकता है। दूसरी श्रेणीके लोगोंमें कितने ही समयपर निकलते और कितने ही आते रहेंगे, तथा कार्यकर्त्ताओंसे समाज खाली नहीं होने पाएगा; और इस प्रकार साम्यवादका युद्ध तबतक जारी रहेगा जबतक कि संसारमें धनी-ग़रीब, शोषक-शोषितका भेद मिट न जाएगा। जब वर्ग-भेद-रहित मानव समाज क़ायम हो जायगा, उस समय वर्तमान की कठिनाइयाँ ही दूर न हो जाएँगी, बल्कि उसकी अनेक प्रकारकी चिन्ताओं और अव्यवस्थाओंके दूर हो जानेसे मानव-जीवन अधिक शांतिमय, सुखमय, और सन्तोषमय होगा, और प्राकृतिक आपदाओंके आनेपर अधिक तैयारी, मुस्तैदी, संयम और धैर्यके साथ उनका मुक़ाबिला किया जा सकेगा। मनुष्यका मनुष्यके साथ बर्ताव भी उस समय अधिक प्रेम, सहानुभूति और समानतापूर्ण तथा दिखावट-शून्य होगा।